ॐ

श्रीपरमात्मने नम.

जीवनोपयोगी प्रवचन



स्वामी रामसुखदास

प्रकाशक— गोविन्द भवन कार्यालय, गीताप्रेस
पो० गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० २०४२ प्रथम संस्करण – २०,०००

मूल्य- तीन रुपये पचहतर पैसे

पता—
गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस गोरखपुर (उ० प्र०)

।।श्रीहरि।।

नम्र निवेदन

परमश्रद्धेय स्वामी श्री रामसुखदासजी महाराज गीता के मर्मज्ञ व्याखाता तो हैं ही, इनके अन्य धार्मिक विषयो पर दिये गये प्रवचन भी अत्यन्त समयोपयोगी एवम् कल्याणकारी होते हैं। स्वामीजी महाराज की भाषा अति सहज सुलभ और मर्म-स्पर्शी है तथा विचार अनुभव-जन्य, सार-गर्भित और प्रेरणादायक होते हैं। सामान्य मनुष्यों के जीवन में जो निराशा, संताप और निरर्थकता व्याप्त हो गई है उसको दूर करके प्राणों में नई चेतना, सार्थकता और संभावनाओं का संचार करने के लिये स्वामीजी महाराज के प्रवचन अत्यन्त उपयोगी हैं।

प्रस्तुत पुस्तिका में संगृहीत स्वामीजी महाराज के प्रवचन आध्यात्म, भक्ति एवम् सेवा मार्ग के साधकों के लिये दिशा-निर्देशन और पाथेय का काम करेंगे। —आवश्यकता है केवल इन विचारों को जानने की, समझने की तथा तदनुसार आचरण करने की। आशा है पाठक-गण इन जीवनोपयोगी विचारों से स्वयं लाभ उठायेंगे तथा इनका अधिक से अधिक प्रसार करेंगे।

गंगा-दशहरा
सं० २०४२

प्रकाशक

।।श्रीहरि।।

श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजका गीता-साहित्य

१.	**साधक-संजीवनी** (गीता हिन्दी टीकासहित)	३५.००
२.	गीताका आरम्भ	३.५०
३	गीताका कर्मयोग (दो खण्डो मे)	७.५०
४.	गीताका ध्यानयोग	२.००
५.	गीताकी राजविद्या	४.५०
६.	गीताकी विभूति और विश्वरूपदर्शन	३.००
७.	गीता का भक्तियोग	४.००
८.	गीता का ज्ञानयोग	४.००
९.	गीताकी सम्पत्ति और श्रद्धा	३.००
१०.	गीताका सार	४.५०
११.	गीता माधुर्य	४.५०
१२.	गीताका सारभूत श्लोक (शरणागति)	०.८०
१३.	गीता-दर्पण	प्रेसमें

।।श्रीहरि।।

विषय सूची

।।श्रीहरि।।

श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजके महत्वपूर्ण प्रवचन-संग्रह

हिन्दी

१. सुन्दर समाजका निर्माण	२.५०
२. मानसमें नाम-वन्दना	प्रेस मे
३. भगवत्प्राप्ति सहज है	२.००
४. भगवान्‌से अपनापन	१.५०
५. कल्याणकारी प्रवचन (प्रथम भाग)	१.५०
६. कल्याणकारी प्रवचन (गुजरातीमें)	२.५०
७. तात्त्विक प्रवचन	२.५०
८. जीवनोपयोगी प्रवचन	३.७५
९. साधकोंके प्रति (प्रथम भाग)	२.००

English

1. Benedictory Discourses	3.50
2. Art of living	3.00
3. Let us know the Truth	In Press



।।श्रीहरि।।

मानव जीवनका लक्ष्य

हम विचार करके देखते है तो स्पष्ट मालूम होता है कि मनुष्य ही परमात्मप्राप्तिका अधिकारी है। जैसे चारों आश्रमोंमे– ब्रह्मचर्याश्रम केवल पढाईके लिये है। इसी तरह चौरासी लाख योनियो में मनुष्य शरीर ब्रह्मविद्याके लिये है। ब्रह्मविद्याकी प्राप्तिके लिये ही मनुष्य शरीर है, और जगह ऐसा मौका नहीं है, न योग्यता है, न कोई अवसर है, क्योकि अन्य योनियोंमें ऐसा विवेक नहीं होता।देवताओंमें समझनेकी ताकत है, पर वहां भोग बहुत है। भोगी आदमी परमात्मामें नहीं लग सकता। यहां भी देखो, ज्यादा धनी आदमी सत्संगमे नही लगते और जो बहुत गरीब है, जिनके पास खाने-पीनेको नही हैं, वे भी सत्सगमे नहीं लगते हैं। उन्हें रोटी-कपड़ेकी चिन्ता रहती है। इसी तरह नरकोंके जीव बहुत दुःखी हैं। बेचारे उनको तो अवसर ही नही मिलता है। देवता लोग भोगी हैं, उनके पास बहुत सम्पत्ति है, वैभव है, पर वे परमात्मा में नहीं लगते, क्योंकि सुख-भोगमें लगे हुए हैं, वहीं उलझे हुए हैं। अतः एक मनुष्य ही ऐसा है जो परमात्माकी प्राप्तिमें लग सकता

है। उनमें योग्यता है। भगवान्‌ने अधिकार दिया है इसलिये मनुष्य शरीरकी महिमा बहुत ज्यादा है, देवताओंसे भी अधिक है।

शरीर तो देवताओंका हमारी अपेक्षा बहुत शुद्ध होता है। हम लोगोंका शरीर बडा गन्दा है। जैसे कोई सूअर मैलेसे भरा हुआ यदि हमारे पास आ जाता है तो उसको छूनेका मन नहीं करता, दुर्गन्ध आती है। ऐसे ही हम लोगोंके शरीरसे देवताओं को दुर्गन्ध आती है। ऐसा दिव्य शरीर है उनका। हमारे शरीरमें पृथ्वी तत्त्वकी प्रधानता है। देवताओं के शरीरमे तेजस-तत्त्वकी प्रधानता है। परन्तु परमात्माकी प्राप्तिका अधिकार जितना मनुष्य शरीरवालोंको मिलता है, इतना उनको नहीं मिलता। इसलिये मनुष्य-शरीरकी बहुत महिमा है।

उत्तरकाण्डमें श्री काकभुंशुण्डिजीसे गरुड़जी प्रश्न करते हैं कि सबसे उत्तम देह कौन-सी है? तो कहते हैं— मनुष्य शरीर सबसे उत्तम है क्योंकि "**नर तन सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत जेही**"। चर-अचर सब जीव इस मनुष्य शरीरकी याचना करते हैं, मांग रखते हैं। ऐसा कहकर आगे कहा—

नरक स्वर्ग अपबर्ग निसेनी।
ग्यान बिराग भगति सुभ देनी।।

(मानस ७/१२०/५)

मनुष्य देह नरक, स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष)—ये तीन देनेवाली है। इसके सिवाय परमात्माका ज्ञान इस शरीरमे हो सकता है। संसारसे वैराग्य हो सकता है और भगवान्‌की श्रेष्ठ भक्ति इसमे हो सकती है। इस शरीरमे ये छह बातें बताई। मनुष्य शरीर एक बडा जंक्शन है। यहाँसे चाहे जिस तरफ जा सकता है। ऐसी मनुष्य शरीरकी महिमा है। इस महिमाको कहते हुए पहले ही नाम लिया— 'नरक, स्वर्ग अपवर्ग निसेनी' नरकोंमें जा सकते है—यह महिमा है कि निन्दा! मनुष्य शरीर ऐसा है, जिसमें नरक मिल सकते हैं— तो यह निन्दा हुई। इसमें तात्पर्य क्या निकला? ऊँची-से-ऊँची और नीची-से-नीची चीज मिल सकती है, इस मानव शरीरसे। यह इसकी महिमा है।

वास्तवमें महिमा है शरीरके सदुपयोग की। इसका उपयोग ठीक तरहसे किया जाय तो भगवान्‌की श्रेष्ठ भक्ति मिल जाय, मुक्ति मिल जाय, वैराग्य मिल जाय, सब कुछ मिल जाय। ऐसी कोई चीज नही जो मनुष्य शरीरसे न मिल सके। गीतामे आया है—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।

(गीता ६/२२)

जिस लाभकी प्राप्ति होनेके बाद कोई लाभ शेष न रहे। माननेमे भी नहीं आ सकता कि इससे बढ़कर कोई लाभ होता है और जिसमें स्थित होनेपर वह बड़े भारी

दुःखसे भी विचलित नहीं किया जा सकता। किसी कारण शरीरके टुकड़े-टुकड़े किए जायँ तो टुकड़े करनेपर भी आनन्द रहे, शान्ति रहे, मस्ती रहे। दुःखसे वह विचलित नहीं हो सकता। उसके आनन्दमें कमी नहीं आ सकती।

तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्

(गीता ६/२३)

इतना आनन्द होता है कि दुःख वहाँ रहता ही नहीं। ऐसी चीज प्राप्त हो सकती है, मानव-शरीर से! मनुष्य शरीरकी ऐसी महिमा तत्त्व-प्राप्तिकी योग्यता होनेके कारणसे है। मनुष्य शरीरको प्राप्त करके ऐसे ही तत्त्वकी प्राप्ति करनी चाहिये। उसे प्राप्त न करके झूठ, कपट, बेईमानी, विश्वासघात, पाप करके नरकोंकी तैयारी कर लें तो कितना महान् दुःख है!

यह ख्याल करनेकी बात है कि मनुष्य-शरीर मिल गया। अब भाई अपनेको नरकोंमें नहीं जाना है। चौरासी लाख योनियोंमें नहीं जाना है। नीची योनिमें क्यों जायें? चोरी करनेसे, हत्या करनेसे, व्यभिचार करनेसे, हिंसा करनेसे, अभक्ष्य-भक्षण करनेसे, निषिद्ध कार्य करनेसे मनुष्य नरकोंमें जा सकता है। कितना सुंदर अवसर भगवान्‌ने दिया है कि जिसे देवता भी प्राप्त नहीं कर सकते, ऐसा ऊँचा स्थान प्राप्त किया जा सकता है—इसी जीवनमें! प्राणोंके रहते-रहते बड़ा भारी लाभ लिया जा सकता है। बहुत शान्ति, बड़ी प्रसन्नता, बहुत

आनन्द—इसमें प्राप्त हो जाता है। ऐसी प्राप्तिका अवसर है मानव शरीरमे! इसलिये इसकी महिमा है। इसको प्राप्त करके भी जो नीचा काम करते है, वे बहुत बडी भूल करते है।

कोई बढ़िया चीज मिल जाय तो उसका लाभ लेना चाहिये। जैसे किसीको पारस मिल जाय तो उससे लोहेको छुआनेसे लोहा सोना बन जाय। अगर ऐसे पारससे कोई बैठा चटनी पीसता है तो वह पारस चटनी पीसनेके लिए थोड़े ही है। पारस पत्थरसे चटनी पीसना ही नहीं, कोई अपना सिर ही फोड ले-तो पारस क्या करे? इसी तरह मानव-शरीर मिला, इससे पाप, अन्याय, दुराचार करके नरकोकी प्राप्ति कर लेना अपना सिर फोडना है। ससारके भोगोमे लगना—यह चटनी पीसना है।

भोग कहाॅ नही मिलेगे? सूअरके एक साथ दस-बारह बच्चे होते हैं। अब एक दो बच्चे पैदा कर लिये तो क्या कर लिया? कौन-सा बडा काम कर लिया? धन कमा लिया तो कौन-सा बड़ा काम कर लिया? सापके पास बहुत धन होता है। धनके ऊपर सांप रहते हैं। धन तो उसके पास भी है। धन कमाया तो कौन-सी बडी बात हो गई? ऐश-आराममे सुख देखते हैं और कहते हैं कि इसमे सुख भोग ले। बम्बई में मैंने कुत्ते देखे हैं,जिन्हे बड़े आराम से रखा जाता है। बाहर जाते हैं तो मोटर और हवाई जहाज में ले जाते हैं। मनुष्योंमें भी बहुत कमको

ऐसा आराम मिलता है, जो कुत्तेको मिलता है। भाग्यमें है तो कुत्तोंको भी मिल जायगा। कौन-सा काम बाकी रह जायगा, जिसके लिये मनुष्य शरीर नष्ट किया जाय! भोगोंके भोगनेमें, संसारका सुख लेनेमें धन कमानेमें मनुष्य शरीर बर्बाद कर देना कितनी बड़ी भूल की बात है! झूठ, कपट, बेईमानी करके मनुष्य नरकोंकी तैयारी कर लेता है, यह महान् पतनकी बात है। कितना ऊँचा शरीर मिला है मनुष्य को! उस शरीर में आकर ऐसा काम कर ले! अतः सावधान रहना चाहिये कि बड़े-से-बड़ा काम हमें करना है, बढ़िया-से-बढ़िया काम हमें करना है। यह काम दूसरी योनिमें नहीं हो सकता।

एक मनुष्य शरीरमें किये हुए पापोंका चौरासी लाख योनियोंमें भोग होता है। सत्य, त्रेता, द्वापर, कलि—ये चारो युग बीत जाते हैं चौरासी लाख योनि और नरकोंके कुण्ड भोगते-भोगते, फिर भी मनुष्य शरीरमें किया हुआ पाप बाकी पड़ा रहता है। बीचमें भगवान् कृपा करके मनुष्य शरीर देते हैं। सञ्चित पाप और पड़े हुए हैं। भोगनेपर भी सारे पाप समाप्त नहीं होते, इतने महान् पाप हैं, जो इस मनुष्य शरीरमें बनते हैं। यह मनुष्य शरीर है जिससे परमात्माकी प्राप्ति कर सकते हैं। अनन्त ब्रह्माण्ड जिसके फुरणा-मात्रसे रचित होते हैं, पण्डित होते हैं, वे परमात्मा तुम्हारी आज्ञा माननेके लिये तैयार हो जाते हैं। "ताहि अहीर की छोहरियां छछिया भरि

छाछ पै नाच नचावें।" उन गोपियोंके हृदयमें भगवान्‌के प्रति प्रेम होनेके कारण वे कहती हैं– 'लाला छाछ दूंगी, थोडा नाचो।' तो भगवान् नाचने लग जाते है। 'लाला बंसी बजाओ, छाछ पिलाऊँगी।' अब बोलो छाछके बदले वे परमात्मा नाचने और बंसी बजानेको तैयार! इतना ऊँचा पद, इस मनुष्य-शरीरसे मिल सकता है। इस शरीरकी प्राप्ति करके हम फिर कर ले नरकों की तैयारी–महान् दुःखोंकी तैयारी, कितनी बड़ी भारी गलती है! ऐसा मनुष्य-शरीर मिल जाय तो बडे-से-बड़ा लाभ ले लेना चाहिये।

जैसे वृन्दावनमें आ गये हो तो भगवान्‌के दर्शन करो, जमुनाजीमें स्नान करो। वहॉंके रहनेवालोसे पूछो कि ज्यादा लाभकी बात कौन-सी है। ज्यादा पुण्यदायक, उद्धार करनेवाली चीज कौन-सी है। वृन्दावनमें आए हो तो वृन्दावनका आनन्द लो। अब वृन्दावनमें आकर नाटक, सिनेमा देखते हो। अरे भाई! यहां क्यों आए? बम्बई, कलकत्तामें बहुत बढ़िया सिनेमा है। यह तो तीर्थ-स्थल है। भगवान् के दर्शन करो। जहॉं कीर्तन होता हो, कथा होती हो-ऐसी जगह जाओ और विशेष लाभ लो। वृन्दावन में आए हो ना? इसी तरह मानव शरीरमें आये हो तो विशेष लाभ ले लो। पर यहॉं भी वही काम करते हो जो पशु-पक्षी करते हैं, वही खाना-पीना, वही बाल बच्चे पैदा करना। यह तो भैया कुत्ते बन जाओ तो तैयार, सूअर बन जाओ, गधे बन जाओ तो तैयार,

ऐसा आराम मिलता है, जो कुत्तेको मिलता है। भाग्यमें है तो कुत्तोको भी मिल जायगा। कौन-सा काम बाकी रह जायगा, जिसके लिये मनुष्य शरीर नष्ट किया जाय! भोगोके भोगनेमें, संसारका सुख लेनेमें धन कमानेमें मनुष्य शरीर बर्बाद कर देना कितनी बड़ी भूल की बात है! झूठ, कपट, बेईमानी करके मनुष्य नरकोंकी तैयारी कर लेता है, यह महान् पतनकी बात है। कितना ऊँचा शरीर मिला है मनुष्य को! उस शरीर में आकर ऐसा काम कर ले! अतः सावधान रहना चाहिये कि बड़े-से-बड़ा काम हमें करना है, बढ़िया-से-बढ़िया काम हमें करना है। यह काम दूसरी योनिमें नहीं हो सकता।

एक मनुष्य शरीरमें किये हुए पापोंका चौरासी लाख योनियोंमें भोग होता है। सत्य, त्रेता, द्वापर, कलि—ये चारों युग बीत जाते हैं चौरासी लाख योनि और नरकोंके कुण्ड भोगते-भोगते, फिर भी मनुष्य शरीरमें किया हुआ पाप बाकी पड़ा रहता है। बीचमें भगवान् कृपा करके मनुष्य शरीर देते हैं। सञ्चित पाप और पड़े हुए हैं। भोगनेपर भी सारे पाप समाप्त नहीं होते, इतने महान् पाप हैं, जो इस मनुष्य शरीरमें बनते हैं। यह मनुष्य शरीर है जिससे परमात्माकी प्राप्ति कर सकते हैं। अनन्त ब्रह्माण्ड जिसके फुरणा-मात्रसे रचित होते हैं, पण्डित होते हैं, वे परमात्मा तुम्हारी आज्ञा माननेके लिये तैयार हो जाते हैं। "ताहि अहीर की छोहरियां छछिया भरि

छाछ पै नाच नचावें।" उन गोपियोंके हृदयमें भगवान्‌के प्रति प्रेम होनेके कारण वे कहती हैं– 'लाला छाछ दूंगी, थोड़ा नाचो।' तो भगवान् नाचने लग जाते हैं। 'लाला बंसी बजाओ, छाछ पिलाऊँगी।' अब बोलो छाछके बदले वे परमात्मा नाचने और बंसी बजानेको तैयार! इतना ऊँचा पद, इस मनुष्य-शरीरसे मिल सकता है। इस शरीरकी प्राप्ति करके हम फिर कर लें नरकों की तैयारी–महान् दुःखोंकी तैयारी, कितनी बडी भारी गलती है! ऐसा मनुष्य-शरीर मिल जाय तो बडे-से-बड़ा लाभ ले लेना चाहिये।

जैसे वृन्दावनमें आ गये हो तो भगवान्‌के दर्शन करो, जमुनाजीमें स्नान करो। वहाँके रहनेवालोंसे पूछो कि ज्यादा लाभकी बात कौन-सी है। ज्यादा पुण्यदायक, उद्धार करनेवाली चीज कौन-सी है। वृन्दावनमें आए हो तो वृन्दावनका आनन्द लो। अब वृन्दावनमें आकर नाटक, सिनेमा देखते हो। अरे भाई! यहा क्यों आए? बम्बई, कलकत्तामें बहुत बढ़िया सिनेमा है। यह तो तीर्थ-स्थल है। भगवान् के दर्शन करो। जहाँ कीर्तन होता हो, कथा होती हो-ऐसी जगह जाओ और विशेष लाभ लो। वृन्दावन में आए हो ना? इसी तरह मानव शरीरमें आये हो तो विशेष लाभ ले लो। पर यहाँ भी वही काम करते हो जो पशु-पक्षी करते हैं, वही खाना-पीना, वही बाल बच्चे पैदा करना। यह तो भैया कुत्ते बन जाओ तो तैयार, सूअर बन जाओ, गधे बन जाओ तो तैयार,

कौआ बन जाओ तो तैयार। ये चीजें कौन-सी बाकी रहेगी। इन चीजोके लिये आए हो क्या मनुष्य शरीर मे? मनुष्य शरीर क्यो खराब करते हो?" यह शरीर क्यों प्राप्त किया? भगवान्‌ने कृपा कर शरीर दिया है तो इस शरीरसे होनेवाले वे लाभ लो, जो दूसरे शरीरमे हो नहीं सकते।

बड़ें भाग मानुष तनु पावा।
सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा।।

(मानस ७/४२/४)

मनुष्य शरीर देवताओंको दुर्लभ है, ऐसा ग्रन्थोंमे कहा है। ऐसा दुर्लभ शरीर। जिसको प्राप्त करके केवल परमात्म-तत्त्वकी प्राप्ति करनी चाहिये। केवल परमात्मतत्त्वमें ही सच्चे हृदयसे एकदम लग जाना चाहिये। मौका है भाई। जैसे मनुष्य शरीर दुर्लभ है, वैसे कलियुगभी दुर्लभ है। जैसा मौका कलियुगमें मिलता है, वैसा अन्य युगमें नहीं मिलता। ऐसे कलियुगमें मौका मिला। उस कलियुगको प्राप्त करके भोगोंमें लग गए अथवा पापोमें लग गए, अन्यायमें लग गए। शास्त्रकी दृष्टिसे अन्याय, हम भी विचारसे देखें तो अन्याय, लौकिक दृष्टिसे अन्याय, लोग देख लें तो शर्म आये। ऐसे-ऐसे कामोंमें लग जाय मनुष्य शरीर प्राप्त करके। कितनी हानि की बात है! तो हम क्या करें।

आज दिन तक हुआ सो हुआ। गलती हुई तो हुई।

आजसे दृढ निश्चय कर लो कि समय बरबाद नहीं करेगे, पाप व अन्याय नही करेगे। जल्दी-से-जल्दी तत्त्वकी प्राप्ति कैसे हो? कैसे उस तत्त्वका बोध हो? कैसे भगवान्‌के चरणोमे प्रेम हो जाय? ऐसी लालसा लगाओ।

प्रश्नः क्या हमारा भी प्रेम हो सकता है? क्या इस शरीरसे कल्याण हो सकता है?

उत्तरः ध्यान देकर सुनें। इस शरीरसे ही कल्याण हो सकता है। कल्याण भी आप कर सकते हो। लखपति बन जाओ आपके हाथकी बात नही, मकान-इमारत हो जाय, आपके हाथकी बात नहीं। संसारमें यश, प्रतिष्ठा, मान, आदर, सत्कार हो जाय, आपके हाथकी बात नहीं है। परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति करना हाथकी बात है। इसमें सब स्वतंत्र हैं। मनुष्य मात्र इसमें स्वतंत्र है, कोई परतंत्र नहीं, क्योंकि बड़े भारी लाभके लिये मनुष्य शरीर मिला है। परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिके लिये ही मानव-शरीर मिला है। उसको प्राप्त करना खास काम है। मनुष्य ध्यान नही देता है। रामायणमें आया है—

कबहुँक करि करुना नर देही।
देत ईस बिनु हेतु सनेही।।

(मानस ७/४३/३)

इस चौपाईपर आप थोड़ा ध्यान दें। भगवान् विशेष कृपा करके मानव शरीर देते हैं। इसका अर्थ क्या हुआ? भगवान्‌ने इस जीवपर विश्वास किया कि इसको मनुष्य

कौआ बन जाओ तो तैयार। ये चीजें कौन-सी बाकी रहेंगी। इन चीजोके लिये आए हो क्या मनुष्य शरीर में? मनुष्य शरीर क्यों खराब करते हो?" यह शरीर क्यों प्राप्त किया? भगवान्‌ने कृपा कर शरीर दिया है तो इस शरीरसे होनेवाले वे लाभ लो, जो दूसरे शरीरमें हो नहीं सकते।

बड़े भाग मानुष तनु पावा।
सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा।।

(मानस ७/४२/४)

मनुष्य शरीर देवताओंको दुर्लभ है, ऐसा ग्रन्थोंमे कहा है। ऐसा दुर्लभ शरीर। जिसको प्राप्त करके केवल परमात्म-तत्त्वकी प्राप्ति करनी चाहिये। केवल परमात्मतत्त्वमें ही सच्चे हृदयसे एकदम लग जाना चाहिये। मौका है भाई। जैसे मनुष्य शरीर दुर्लभ है, वैसे कलियुगभी दुर्लभ है। जैसा मौका कलियुगमें मिलता है, वैसा अन्य युगमें नहीं मिलता। ऐसे कलियुगमें मौका मिला। उस कलियुगको प्राप्त करके भोगोंमे लग गए अथवा पापोंमें लग गए, अन्यायमें लग गए। शास्त्रकी दृष्टिसे अन्याय, हम भी विचारसे देखें तो अन्याय, लौकिक दृष्टिसे अन्याय, लोग देख ले तो शर्म आये। ऐसे-ऐसे कामोमें लग जाय मनुष्य शरीर प्राप्त करके। कितनी हानि की बात है! तो हम क्या करें।

आज दिन तक हुआ सो हुआ। गलती हुई तो हुई।

आजसे दृढ निश्चय कर लो कि समय बरबाद नही करेंगे, पाप व अन्याय नही करेगे। जल्दी-से-जल्दी तत्त्वकी प्राप्ति कैसे हो? कैसे उस तत्त्वका बोध हो? कैसे भगवान्‌के चरणोंमे प्रेम हो जाय? ऐसी लालसा लगाओ।

प्रश्नः क्या हमारा भी प्रेम हो सकता है? क्या इस शरीरसे कल्याण हो सकता है?

उत्तरः ध्यान देकर सुने। इस शरीरसे ही कल्याण हो सकता है। कल्याण भी आप कर सकते हो। लखपति बन जाओ आपके हाथकी बात नही, मकान-इमारत हो जाय, आपके हाथकी बात नहीं। संसारमें यश, प्रतिष्ठा, मान, आदर, सत्कार हो जाय, आपके हाथकी बात नहीं है। परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति करना हाथकी बात है। इसमें सब स्वतंत्र हैं। मनुष्य मात्र इसमें स्वतंत्र है, कोई परतंत्र नहीं, क्योंकि बडे भारी लाभके लिये मनुष्य शरीर मिला है। परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिके लिये ही मानव-शरीर मिला है। उसको प्राप्त करना खास काम है। मनुष्य ध्यान नहीं देता है। रामायणमें आया है—

कबहुँक करि करुना नर देही।
देत ईस बिनु हेतु सनेही।।

(मानस ७/४३/३)

इस चौपाईपर आप थोड़ा ध्यान दें। भगवान् विशेष कृपा करके मानव शरीर देते हैं। इसका अर्थ क्या हुआ? भगवान्‌ने इस जीवपर विश्वास किया कि इसको मनुष्य

शरीर दिया जाय, जिससे इसका दुःख मिट जाय, मेरी प्राप्ति हो जाय इसका कल्याण हो जाय। इस भावनासे मानव शरीर दिया विशेष कृपा करके। जब भगवान्‌की यह भावना है कि मेरी प्राप्ति कर ले तो थोड़ा-सा हम भी इधर ध्यान दे तो भगवान्‌का संकल्प सच्चा होने ही वाला है, पर ध्यान नहीं देता मनुष्य। भगवान् कृपा करके मानव शरीर देते है—इसका अर्थ यही है कि परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है। भगवान्‌ने विश्वास किया। यदि यहाँ आकर जीव भगवान्‌की प्राप्ति नहीं करता है, तो भगवान्‌के साथ विश्वासघात करता है। यहाँ आकर पाप, झूठ, कपट करता है तो बड़ा भारी नुकसान है।

निश्चय कर लो कि आजसे पाप नही करेगे। अन्याय नहीं करेगे और भगवत्तत्त्वकी प्राप्ति करेंगे। जैसे व्यापारी व्यापार खोजता है, इस तरह परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिके लिए खोजमें लगना चाहिये। आपको कोई सन्त, महात्मा मिल जाय, कोई भगवत्प्राप्त पुरुष मिल जाय तो उनसे पूछो कि भगवान् कैसे मिलें? भगवान्‌के चरणोंमें प्रेम कैसे हो? जीवन्मुक्ति कैसे हो, इस बातकी लालसा जगाओ तो—

जेहि कें जेहि पर सत्य सनेहू।
सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू।
(मानस १/२५८/३)

नारायण! नारायण! नारायण!

।।श्रीहरिः।।

सत्संगकी महिमा

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा।

(मानस ३/३४/४)

संत महात्माओंका संग पहली भक्ति है।

भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी।
बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी।।

(मानस ७/४४/३)

भक्ति स्वतन्त्र है, सम्पूर्ण सुखोंकी खान है। कहते हैं:—

सतसंगत मुद मंगल मूला।
सोइ फल सिधि सब साधन फूला।

(मानस १/२/४)

सम्पूर्ण मंगलकी मूल सत्संगति है। वृक्षमें पहिले मूल होता है, और अन्तिम लक्ष्य फल होता है। सत्संगति मूल भी है, और फल भी है। जितने अन्य साधन हैं सब फूल पत्ती है जो मूल और फलके बीचमें रहनेवाली चीजे हैं। सत्संगतिमें ही सब साधन आ जाते हैं। इसलिये सत्संगकी बड़ी भारी महिमा है।

शरीर दिया जाय, जिससे इसका दुःख मिट जाय, मेरी प्राप्ति हो जाय इसका कल्याण हो जाय। इस भावनासे मानव शरीर दिया विशेष कृपा करके। जब भगवान्‌की यह भावना है कि मेरी प्राप्ति कर ले तो थोड़ा-सा हम भी इधर ध्यान दे तो भगवान्‌का संकल्प सच्चा होने ही वाला है, पर ध्यान नहीं देता मनुष्य। भगवान् कृपा करके मानव शरीर देते है—इसका अर्थ यही है कि परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है। भगवान्‌ने विश्वास किया। यदि यहाँ आकर जीव भगवान्‌की प्राप्ति नहीं करता है, तो भगवान्‌के साथ विश्वासघात करता है। यहाँ आकर पाप, झूठ, कपट करता है तो बड़ा भारी नुकसान है।

निश्चय कर लो कि आजसे पाप नहीं करेंगे। अन्याय नहीं करेंगे और भगवत्तत्त्वकी प्राप्ति करेगे। जैसे व्यापारी व्यापार खोजता है, इस तरह परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिके लिए खोजमें लगना चाहिये। आपको कोई सन्त, महात्मा मिल जाय, कोई भगवत्प्राप्त पुरुष मिल जाय तो उनसे पूछो कि भगवान् कैसे मिले? भगवान्‌के चरणोंमें प्रेम कैसे हो? जीवन्मुक्ति कैसे हो, इस बातकी लालसा जगाओ तो—

जेहि कें जेहि पर सत्य सनेहू।
सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू।

(मानस १/२५८/३)

नारायण! नारायण! नारायण!

।।श्रीहरिः।।

सत्संगकी महिमा

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा।

(मानस ३/३४/४)

सत महात्माओका संग पहली भक्ति है।

भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी।
बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी।।

(मानस ७/४४/३)

भक्ति स्वतन्त्र है, सम्पूर्ण सुखोंकी खान है। कहते हैं:—

सतसंगत मुद मंगल मूला।
सोइ फल सिधि सब साधन फूला।

(मानस १/२/४)

सम्पूर्ण मंगलकी मूल सत्संगति है। वृक्षमें पहिले मूल होता है, और अन्तिम लक्ष्य फल होता है। सत्संगत्नि मूल भी है, और फल भी है। जितने अन्य साधन हैं सब फूल पत्ती हैं जो मूल और फलके बीचमें रहनेवाली चीजें हैं। सत्संगतिमें ही सब साधन आ जाते हैं। इसलिये सत्संगकी बड़ी भारी महिमा है।

सुन्दरदासजी महाराज कहते हैं:—

संत समागम करिये भाई।
यामें बैठो सब मिल आई।।

संत समागम करना चाहिये। यह नौकाकी तरह है, इसमें बैठ कर पार हो जायेंगे। सत्संग चन्दनकी तरह पवित्र बना दे, और पारसरूपी सत्संगसे कंचन जैसा हो जाय। ऐसा सत्संग है। आगे सुन्दरदास जी महाराज कहते है—

"और उपाय नहीं तिरने का सुन्दर काढहि राम दुहाई।"
रामजीकी सौगंध दे दी कि कल्याणका और कोई उपाय नहीं है। यह अचूक उपाय है। इसलिये सत्संग में जाकर बैठ जायें तो निहाल हो जायें। सत्का संग करो। जहाँ भगवान्‌की चर्चा हो, सत्‌चर्चा हो, सत्‌चिन्तन हो, सत्कर्म हो और सत्संग हो तो सत्‌के साथ सम्बन्ध हो जाय। बस, इससे निहाल हो जाय जीव।

जीवको जितने दुःख आते हैं, सब असत्‌के संगसे आते हैं, और अविनाशीका संग करते ही स्वतः निहाल हो जाता है, क्योंकि वह भगवान् का अंश है।

ईस्वर अंस जीव अबिनासी।
चेतन अमल सहज सुखरासी।।

(मानस ७/११६/१)

अतः सत्संगसे, सत्का प्रेम होनेसे सत् प्राप्त हो जाता है? सत्संग मिल जाय, परमात्माका संग मिल जाय तो

निहाल हो जाय। सत्‌से जहा सम्बन्ध होता है, वह सत्संग है। भगवान्‌के साथ जो संग है, वह सत्संग है। असली संग होता है, असत्‌के त्यागसे। वैसे असत्‌के द्वारा भी सत्सगमें सहायता होती है, जैसे सत्‌चर्चा करते हैं तो बिना वाणीसे कैसे करें? सत्कर्म करते है तो बिना बाहरी क्रियासे सत्कर्म कैसे करे? सत् चिन्तन करते है तो मनके बिना कैसे करें? पर सत्संगमे दूसरा नहीं हो, अपने आप ही में मिल जाय, तल्लीन हो जाय। सत्संग, सत्‌चिन्तन, सत्कर्म सत्‌चर्चा, और सद्‌ग्रन्थोंके अवलोकन:- इन सबका उद्देश्य सत्संग है। सत्‌की प्राप्तिके लिये असत्‌को दूर कर दे तो सत्संगका उद्देश्य पूरा हो जाता है।

"**सनमुख होई जीव मोहि जबहीं।**" असत्‌से विमुख होनेपर सत्‌का संग हो जाता है। राग, द्वेष, ईर्ष्या आदिका जो कूड़ा-करकट भीतरमें भरा है, यह सत्संग नहीं होने देता। ऐसा मालूम होता है कि मनुष्य चाहे तो इनका त्याग कर सकता है; परन्तु फिर भी इसे कठिनता मालूम देती है; कब तक? जब तक पक्का विचार न हो जाय। पक्का विचार करनेपर यह कठिनता नहीं रहती। चाहे जो हो, हमें तो इधरै ही चलना है, पक्का विचार हो जाय। फिर सुगमता हो जाती है।

मनमें ईर्ष्या, राग, द्वेष आदि दोष भरे हुए हैं। बहुतसे भाई-बहिन इस बातको जानते ही नहीं है और जो जानते हैं वे विशेष ख्याल नहीं करते। कई ख्याल करके छोड़ना भी चाहते हैं, लेकिन इसमे सुख लेते रहते हैं। इस कारण

राग, द्वेष ईर्ष्या आदि छूटते नहीं, क्योंकि असत्‌का संग रहता है।

सत्‌का संग (सत्संग) मिल जाय तो आदमी निहाल हो जाय। जहाँ सत्‌का संग हुआ वह निहाल हुआ। कारण क्या है? परमात्मा सत् हैं। बीचमें जितना-जितना असत्‌का सम्बन्ध मान रखा है, वही बाधा है।

जैसे कल्पवृक्षके नीचे जानेसे सब काम सिद्ध होते है, वैसे ही सत्संग करनेसे सब काम सिद्ध होते हैं। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष— चारों पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं। तो क्या सत्संगसे धन मिल जाता है? कहते है कि सत्संगसे बड़ा विलक्षण धन मिलता है। रुपया मिलनेसे तृष्णा जागृत् होती है, और सत्संग करनेसे तृष्णा मिट जाती है। रुपयोंकी जरूरत ही नहीं रहती।

गंगा पापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरूर्हरेत्।
पापं तापं तथा दैन्यं सद्यः साधुसमागमः।।

गंगाजीमें स्नान करनेसे पाप दूर हो जाते हैं; पूर्णिमाके दिन चन्द्रमा पूरा उदय होता है, उस दिन तपत (गरमी) शांत हो जाती है; कल्पवृक्षके नीचे बैठनेसे दरिद्रता दूर हो जाती है। पर सत्संगसे तीनों बातें होती हैं— पाप नष्ट होते हैं, भीतरी ताप मिट जाता है और संसारकी दरिद्रता दूर हो जाती है।

चाह गई चिन्ता मिटी, मनुआ बेपरवाह।
जिनको कछू न चाहिए, सो साहन पतिशाह।।

सत्संगसे हृदयकी चाहना भी मिट जाती है। यह बात एकदम सच्ची है, सत्संग करनेवाले भाई-बहिन तो इस बातको जानते हैं। बिल्कुल ठीक बात है, सत्संगसे हृदयकी जलन दूर हो जाती है।

मनुष्य चाहता है कि ऐसे हो जाय, वैसे हो जाय तो ऐसी बात आती है कि

मना मनोरथ छोड़ दे तेरा किया न होय।
पानी में घी नीपजे तो सूखी खाय न कोय।।
यदभावि न तद्भावि भावि चेन्नतदन्यथा।
इति चिन्ताविषघ्नोऽयमगदः किं न पीयते।।

जो नहीं होना है, वह नहीं होगा और जो होनेवाला है, वह टल नहीं सकता, होकर रहेगा फिर ऐसा क्यों आग्रह कि यह होना चाहिये, यह नहीं होना चाहिये। बस, हाँ-में-हाँ मिला दें। सत्संग भी एक कला है। सत्संगमें कला मिलती है, दुःखोंसे पार होने की। जैसे समुद्रमे डूबनेवालेको तैरनेकी कला हाथ लग जाय, ऐसे सत्संगमें युक्ति मिल जाय तो निहाल हो जाय।

सत्संगमें उत्तम विचार मिलते हैं। ज्ञानमार्गमें तो यहाँ तक बताया है—

धन किस लिए है चाहता, तू आप मालामाल है।
सिक्के सभी जिससे बनें, तू वह महा टकसाल है।

उस धनके आगे तू इस धनको क्यों चाहता है? धन-ही-धन है; परमात्मा-ही-परमात्मा है; लबालब

भरा हुआ है। उस धनसे धन्य हो जाय। परमात्माका, सत्‌का दर्शन— यह सत्संग करा देता है।

सत्संगमें व्यापार एक ही चलता है, भगवान्‌ की बात। उसीको कहना, सुनना, समझना, विचार करना, चिंतन करना। भगवान् जिसपर कृपा करते हैं, उसको सत्संग देते हैं। सत्संग दे दिया तो समझो भगवान्‌के खजानेकी बढ़िया चीज मिल गई। जो भगवान्‌के प्यारे होते हैं, वे भगवान्‌के भीतर रहते हैं। यह हृदयका धन है। माता-पिता जिस बालकपर ज्यादा स्नेह रखते है, उसको अपनी पूँजी बता देते हैं कि बेटा, देखो यह धन है। ऐसे ही भगवान् जब बहुत कृपा करते हैं तो अपने खजानेकी चीज (पूँजी) संत महात्माओंको देते है— लो बेटा, यह धन हमारे पास है।

सत्संग मिल जाय तो समझना चाहिये कि हमारा उद्धार करनेकी भगवान्‌के मनमें विशेषतासे आ गई नहीं तो सत्संग क्यों दिया? हम तो ऐसे ही जन्मते-मरते रहते, यह अडंगा क्यों लगाया? तो यह कल्याण करनेके लिये लगाया है। जिसे सत्संग मिल गया तो उसे तो यह समझना चाहिये कि भगवान्‌ने उसे निमन्त्रण दे दिया कि आ जाओ। ठाकुरजी बुलाते हैं। अपने तो प्रेमसे सत्संग करो, भजन स्मरण करो, जप करो। सत्संग करनेमे सब स्वतन्त्र हैं। सत् परमात्मा सब जगह मौजूद है। वह परमात्मा मेरा है और मैं उसका हूँ— ऐसा मानकर सत्संग करे तो वह निहाल हो जाय।

सत्संग कल्पद्रुम है। सत्संग अनन्त जन्मोंके पापोंको नष्ट-भ्रष्ट कर देता है। जहाँ सत्की तरफ गया कि असत् नष्ट हुआ। असत् तो बेचारा नष्ट ही होता है। जीवित रहता ही नहीं। इसने पकड़ लिया असत्को। अगर यह सत्की तरफ जायगा तो असत्तो खत्म होगा ही। सत्संग अज्ञानरूपी अन्धकारको दूर कर देता है। महान् परमानन्द-पदवीको दे देता है। यह परमानन्द-पदवी दान करता है। कितनी विलक्षण बात है! सत्संग क्या नहीं करता? सत्सग सब कुछ करता है। "प्रसूते सद्बुद्धिम्"। सत्संग श्रेष्ठ बुद्धि पैदा करता है। बुद्धि शुद्ध हो जाती है।

गोस्वामीजी महाराज लिखते हैं:-

मज्जन फल पेखिअ ततकाला।
काक होहिं पिक बकउ मराला।।

(मानस १/२/१)

साधु-समाजरूपी प्रयागमें डुबकी लगाने से तत्काल फल मिलता है। कौआ कोयल बन जाता है, बगुला हंस बन जाता है अर्थात् सत्संग करनेसे रंग नहीं बदलता, ढग बदल जाता है। जो वाणी कौआ की तरह है, वह कोयलकी तरह हो जाती है। जो बगुला होता है वह हंसकी तरह नीर-क्षीर विवेक करने लगता है। सत्संगसे आचरण और विवेक तत्काल बदल जाते हैं। सत्संग मिल जाय तो ये बदल जाते हैं। अगर नहीं बदले तो या तो सत्संग नही मिला या सत्संगमें आप नहीं गए। दोनोंके

मिलनेसे ही काम बनता है। पारस लोहेको सोना बना दे, अगर मिले तब तो, पर बीचमें पत्ता रख दिया तो फिर कुछ नहीं बननेका।

भगवान्‌के प्रति व सन्त-महात्माओंके प्रति निष्काम भावसे प्रेम करो। भगवान् मीठे लगें, प्यारे लगें, अच्छे लगें। क्यों लगें? क्योंकि वे मेरे हैं। बच्चोंको मां अच्छी लगती है। क्यों लगती है? क्योंकि मेरी माँ है। ऐसे ही भगवान्‌के साथ अपनापन रहे, तो यह सत्संग होता है। भगवान् हमारे है, हम भगवान्‌के हैं। कैसी बढ़िया बात है!

एक सज्जन मिले। वे कहते थे कि तीर्थोंका महात्म्य बहुत है। गंगाजी अच्छी है, यमुनाजी अच्छी हैं, प्रयागराज बड़ा अच्छा है-- ऐसा लोग कहते तो हैं, परन्तु किराया तो देते नहीं। किराया दें तो वहां जायें। सत्संगमें बढ़िया-बढ़िया बात सुनते हैं, और परमात्माके धाम जानेके लिये किराया भी मिलता है। सत्संगमें ज्ञान मिलता है, प्रेम मिलता है, भगवान्‌की भक्ति मिलती है। भगवान् शबरीसे कहते हैं, "**प्रथम भगति संतन्ह कर संगा**"। दण्डक वन था, उसमें वृक्ष आदि सब सूखे हुए थे। उसमें शबरी रहती थी। यहाँ शबरीको संतसंग मिल गया, यह भगवान्‌की कृपा है। मतंग ऋषि थे, बड़े वृद्ध संत, कृपा की मूर्ति। उन्होंने शबरीको आश्वासन दिया था कि बेटा, तू चिन्ता मत कर, यहाँ रह जा। ऋषि-मुनियोंने इसका बड़ा विरोध किया, पर संतकी

कृपा बडी विचित्र होती है।

धनी आदमी राजी हो जाय तो धन दे दे, अपनी कुछ चीज दे दे, परन्तु संत कृपा करें तो भगवान्‌को दे दें। उनके पास भगवान् रूपी धन होता है। वे सामान्य धनके धनी नहीं होते है, असली धनके धनी होते है, मालामाल होते हैं, और वह माल ऐसा विलक्षण है कि **'दानेन वर्धते नित्यम्'**, ज्यों-ज्यों देते हैं, त्यों-त्यो बढ़ता है। ऐसा अपूर्व धन है। अतः खुला खर्च करते है। खुला भडार पडा हुआ है, अपार, असीम, अनन्त है, जिसका कोई अंत ही नहीं है। भगवान्‌का ऐसा अनन्त अपार खजाना है। फिर भी मनुष्य मुफ्तमें दुःख पा रहे है। इसलिये सज्जनों, बड़े आश्चर्यकी बात है!

पानी में मीन पियासी, मोहि देखत आवै हाँसी।
जल बिच मीन, मीन बिच जल है निश दिन रहत पियासी।

भगवान्‌में सब संसार है और सबके भीतर भगवान् हैं। उन भगवान्‌से विमुख होते हैं **"सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं"** तो संत-महात्मा जीवको परमात्माके सन्मुख कर देते हैं। अरे भाई परमात्मा तो सन्मुख है ही, हमारा प्यारा माता-पिता, भाई-बन्धु, कुटुम्बी, सम्बन्धी– वह सब तरहसे अपना है। वे प्रभु हमारे है। संत ऐसी बात बता दें और हम वह बात सुनकर पकड़ लें तो बड़ा भारी लाभ होता है। स्वयं हम पकड़ें, और किसी संत-महात्माके कहनेसे हृदयसे पकड़ें तो उसमें बड़ा

अन्तर होता है।

सत-महात्मा जो कहते है, उनके वचनोका आदर करो। जमानत भी ली जाती है तो इज्जतदार आदमी की। हर एक की जमानत नही होती है। ऐसे ही भगवान्‌के दरबारमें सत-महात्माओंकी और भक्तोंकी बडी इज्जत है, तभी तो गोस्वामीजीने कह दिया—

सत्य वचन आधीनता पर तिय मातु समान।
इतने पै हरि ना मिले तो तुलसीदास जमान।।

तुलसीदासजीकी जमानत है। सत लोग जमानत दे देते है, और वह भगवान्‌के यहाँ चलती है। सतोके यहां परमात्माका बडा खजाना रहता है। मुफ्तमे धन मिलता है, मुफ्तमे कमाया हुआ तैयार किया हुआ! सत्सगसे यह सब मिल सकता है।

प्रश्नः कुछ लोगोको सत्संग करना सुहाता ही नही नहीं। इसका क्या कारण है?

उत्तरः— पापीका यह स्वभाव है कि उसे सत्सग सुहाता नहीं।

पापवंत कर सहज सुभाऊ।
भजनु मोर तेहि भाव न काऊ।।

(मानस ५/४३/२)

तुलसी पूरब पाप ते, हरि चर्चा न सुहाय।
जैसे ज्वर के जोर ते, भूख बिदा ह्वै जाय।

मनुष्यको बुखार आ जाता है तो भूख नही लगती, अन्न अच्छा नही लगता। अन्न अच्छा नही लगता तो इसका अर्थ है उसको रोग है। जब पित्तका जोर होता है तो मिश्री भी कडवी लगती है। मिश्री कडवी नही है, उसकी जीभ कडवी है। इसी तरह जिसे भगवान्की चर्चा सुहाती नही, तो इसका कारण है कि उसे कोई बडा रोग हो गया। कथामे रुचि नही होती तो स्पष्ट है कि अन्त करण बहुत मैला है, मामूली मैला नही, ज्यादा मात्रामे मैला है।

ज्यादा मैला होनेपर क्या उसको सत्सग दूर नही कर सकता?

सत्सग सब मैलो को दूर कर सकता है, पर मनुष्य पास ही नही आता। बुखारका जोर होनेसे अन्न अच्छा नही लगता, और मिश्री कडवी लगती है। कैसे करे? मिश्री कडवी लगे तो भी खाते रहो। मिश्रीमे खुदमे ताकत है कि वह पित्तको शान्त कर देगी, और मीठी लगने लगेगी। ऐसे ही भजनमे रुचि नही हो, तो भी भजन करते रहो। भजन करते-करते ज्यो-ज्यो पाप नष्ट होते है, त्यो-त्यो उसमे मिठास आने लगता है। सत्सगमे ऐसे लोग आए है जो रुचि नही रखते थे। पर किसीके कहनेसे आए तो फिर विशेषतासे आने लग गए।

प्रश्नः सत्संग प्रतिदिन क्यो किया जाय?

उत्तरः सत्सगकी महिमा क्या कहे? सत्संग तो रोजाना करनेका है, नित्य प्रति करनेका है। यह त्यागनेका है ही नही। सत्संगसे सांसारिक बाधाए मिट

जाती हैं। कोई बीमार होता है, कोई लड़ाई करता है
किसीको कोई और बाधा लग जाती है– ये सप
तरह-तरहके साप है जो काटते हैं। उनसे जहर चढ़ जाता
है तो वह घबरा जाता हैं। वह अगर सत्संगमें जाकर
सत्संगरूपी बूंटी सूंघ ले, तो स्वस्थ हो जाय, प्रसन्न हो
जाय। चित्तकी चिन्ता दूर हो जाय। ·र ·र संस.रप
काम करे। काम करते-करते उसमें उलझ जाते हैं
जहर चढ़ जाता है। वह जहर सत्संगमें जानेसे ठीक
जाता है। इस तरह करते हुए हमारे जो शत्रु हैं–
क्रोध, राग, द्वेष आदि वे सब-के-सब-मर जाते है। ज
अन्न, जल आवश्यक है, सांस लेना आवश्यक है, उस
तरह सत्संग भी प्रतिदिन करना जरूरी है। वह तो जप
खुराक है। सत्संगसे बहुत शान्ति मिलती है। बहुत
मानसिक बीमारियाँ दूर होती है। सत्सग सूर्यकी तर
होता है जो अन्तःकरणके अंधकारको दूर कर देता है
उससे पाप दूर हो जाते हैं, बिना पूछे शंकाएँ दूर हो जा
हैं। तरह-तरहकी जो हृदयमें उलझनें हैं, वे सुलझ जा
हैं। सत्संग जहाँ हो जाय, मिल जाय तो समझना चा
कि भगवान्‌ने विशेष कृपा की। भगवान् शंकरने दो
बात मांगी– **'पद सरोज अनपायनी भगति'**, और
सत्संग।'

प्रश्नः सत्संगसे मुफ्तमें लाभ मिलता है सो कैसे?

उत्तरः सत्संगसे जो लाभ होता है वह साधनसे
होता। साधन करके जो परमात्मतत्त्वको प्राप्त ·रता

वह कमा कर धनी बनता है और सत्सगसे वह गोद चला जाता है, कमाया हुआ धन मिल जाता है। सतोका कमाया हुआ धन मिलता है। गोद जाने वालेको क्या जोर आवे? आज कगाल और कल लखपति। वह तो जा बैठा गोद मे। कमाये हुए धन का मालिक हो जाता है। सत्सगके द्वारा ऐसे चीजे मिलती है, जो वर्षो तक साधन करनेसे भी नही मिलती। अत· सत्सग मिल जाय तो अवश्य करना चाहिये। मुफ्तमे कल्याण होता है, मुफ्तमें।

प्रश्नः नाम जपसे अधिक सत्सगकी महिमा कही—इसका क्या कारण है?

उत्तरः सत्सग करनेवाला नाम जपे बिना रह नही सकता। नाम जप स्वाभाविक ही होगा।

प्रश्नः सत्संग न मिले तो क्या करे?

उत्तरः भगवान्‌से प्रार्थना करे हे नाथ! हे नाथ! करके पुकारो। भगवान् सर्वसमर्थ है। उनको पुकारते जाओ वे सत्सगकी व्यवस्था बैठा देंगे। इसके अलावा सत्‌शास्त्रोका अध्ययन करे।

प्रश्नः मनुष्यका सुधार करनेमे सबसे बढ़िया उपाय क्या है? आप अपने अनुभवके आधारपर बतावें।

उत्तरः मेरेको जितना लाभ सत्संगसे हुआ है, उतना किसी साधनसे नही हुआ। अच्छे संगमें रहनेसे बड़ा भारी लाभ होता है, जिसकी कोई सीमा नहीं। सत्संग मत छोड़ो, जिस सत्संगसे अपनी हृदयकी गांठ खुलती है, आत्मसाक्षात्कार होता है, प्रकाश मिलता है, ऐसा

जाती हैं। कोई बीमार होता है, कोई लड़ाई करता है, किसीको कोई और बाधा लग जाती है– ये तरह-तरहके सांप है जो काटते हैं। उनसे जहर चढ़ जाता है तो वह घबरा जाता है। वह अगर सत्संगमें जाकर सत्संगरूपी बूंटी सूंघ ले, तो स्वस्थ हो जाय, प्रसन्न हो जाय। चित्तकी चिन्ता दूर हो जाय। फिर जाकर संसारका काम करे। काम करते-करते उसमें उलझ जाते हैं तो जहर चढ़ जाता है। वह जहर सत्संगमें जानेसे ठीक हो जाता है। इस तरह करते हुए हमारे जो शत्रु हैं– काम, क्रोध, राग, द्वेष आदि वे सब-के-सब मर जाते हैं। अन्न, जल आवश्यक है, सांस लेना आवश्यक है, उसी तरह सत्संग भी प्रतिदिन करना जरूरी है। वह तो रोजकी खुराक है। सत्संगसे बहुत शान्ति मिलती है। बहुत-सी मानसिक बीमारियाँ दूर होती हैं। सत्संग सूर्यकी तरह होता है जो अन्तःकरणके अंधकारको दूर कर देता है। उससे पाप दूर हो जाते हैं, बिना पूछे शंकाएँ दूर हो जाती हैं। तरह-तरहकी जो हृदयमें उलझनें हैं, वे सुलझ जाती हैं। सत्संग जहाँ हो जाय, मिल जाय तो समझना चाहिये कि भगवान्‌ने विशेष कृपा की। भगवान् शंकरने दो बात मांगी– 'पद सरोज अनपायनी भगति', और दूसरी 'सत्संग।'

प्रश्नः सत्संगसे मुफ्तमें लाभ मिलता है सो कैसे?

उत्तरः सत्संगसे जो लाभ होता है वह साधनसे नहीं होता। साधन करके जो परमात्मतत्त्वको प्राप्त करते

वह कमा कर धनी बनता है और सत्सगसे वह गोद चला जाता है, कमाया हुआ धन मिल जाता है। सतोका कमाया हुआ धन मिलता है। गोद जाने वालेको क्या जोर आवे? आज कगाल और कल लखपति। वह तो जा बैठा गोद मे। कमाये हुए धन का मालिक हो जाता है। सत्सगके द्वारा ऐसे चीजे मिलती है, जो वर्षो तक साधन करनेसे भी नही मिलती। अत सत्संग मिल जाय तो अवश्य करना चाहिये। मुफ्तमे कल्याण होता है, मुफ्तमे।

प्रश्न: नाम जपसे अधिक सत्सगकी महिमा कही—इसका क्या कारण है?

उत्तर: सत्सग करनेवाला नाम जपे बिना रह नहीं सकता। नाँम जप स्वाभाविक ही होगा।

प्रश्न: सत्संग न मिले तो क्या करे?

उत्तर: भगवान्से प्रार्थना करे हे नाथ! हे नाथ! करके पुकारो। भगवान् सर्वसमर्थ है। उनको पुकारते जाओ वे सत्सगकी व्यवस्था बैठा देंगे। इसके अलावा सत्शास्त्रोका अध्ययन करें।

प्रश्न: मनुष्यका सुधार करनेमे सबसे बढ़िया उपाय क्या है? आप अपने अनुभवके आधारपर बतावे।

उत्तर: मेरेको जितना लाभ सत्संगसे हुआ है, उतना किसी साधनसे नही हुआ। अच्छे संगमें रहनेसे बडा भारी लाभ होता है, जिसकी कोई सीमा नहीं। सत्संग मत छोड़ो, जिस सत्सगसे अपनी हृदयकी गांठ खुलती है, आत्मसाक्षात्कार होता है, प्रकाश मिलता है, ऐसा

सत्सग छोडो मत। सब कुछ मिल जाता है पर "सत समागम दुर्लभ भाई"।

प्रश्नः सत्सगसे प्रकाश कैसे मिलता है?

उत्तरः सत्सगतिका अर्थ होता है प्रकाश। जैसे हम कही जाते है और रात्रिका समय हो तो मोटरका प्रकाश सामने ही रहता है। ऐसा नही होता कि प्रकाश पीछे रह जाय और मोटर आगे निकल जाय। प्रकाश आगे ही रहेगा और वह प्रकाश चलनेके लिये रास्ता बताता है। ऐसे ही सत्सगतिसे मनुष्य को प्रकाश मिलता है कि हम कैसे चले? सत्सगकी बातें केवल याद कर लें, पुस्तकोमे पढ ले, लोगोसे कह दे और हम उसके अनुसार चले नही तो प्रकाशको तेज करने मात्रसे रास्ता नहीं कटता। लाइट कम भी है, परन्तु जहाँ तक रास्ता दिखता है, वहाँ तक हम चलते जाये तो उससे आगे दिखने ही लगेगा– यह नियम है। परन्तु एक जगह खडे-खडे कितनी ही तेज लाइट कर ले गन्तव्य स्थान नहीं दिखेगा। ऐसे ही सत्संगतिके द्वारा हमे जो प्रकाश मिल जाय उसके अनुसार अपना जीवन बनावें, उसके अनुसार चले। तभी वह प्रकाश सार्थक होता है। जीवन न भी बनावे तो भी यह प्रकाश निरर्थक नहीं जाता; क्योंकि जो सत्य चीज है, वह प्रकट हो ही जाती है। सत्यकी विजय होती है, झूठकी विजय नहीं होती। परन्तु यदि सत्यका आदर करें तो बहुत जल्दी और विशेष लाभ ले सकते हैं। तो सत्सगकी बातें अपने आचरणमे लाना चाहिये।

नारायण! नारायण! नारायण!

।।श्रीहरि।।

दुर्गुणोंका त्याग

आप खूब ध्यान दे, मनुष्यसे दोष उस समय होता है जब वह किसीसे कुछ चाहता है। अपना अभिमान होता है और सुख चाहता है, सयोगजन्य सुखकी अभिलाषा भीतर होती है। अर्जुनने पूछा कि मनुष्य पाप करना नही चाहता, फिर पाप क्यों हो जाता है? भगवान्‌ने यही उत्तर दिया है कि उसके मनमे सुख-भोगकी, और संग्रहकी कामना है, चाहना है। जब तक यह चाहना रहेगी, तब तक पाप होता ही रहेगा। सावधान होनेपर भी फिर गफलत हो जायगी।

इसके मिटनेका उपाय क्या है? असली उपाय भीतरका प्रायश्चित है, पश्चाताप हो जाय, जलन पैदा हो जाय। जिस पाप कर्मसे जितना सुख हुआ, उस सुखकी अपेक्षा पश्चात्ताप अधिक हो जाय और यह प्रतिज्ञा कर ले कि कभी किसीको धोखा नही दूँगा, ऐसी भूल कभी नहीं करूँगा, ऐसा पक्का विचार कर ले और उसपर डटा रहे तो पहले किया हुआ पाप नष्ट हो जायगा। परन्तु यदि विचार भी करता रहता है फिर भी वैसा ही पाप करता रहता है तो वह नष्ट नहीं होता। नया-नया पाप होता

रहता है, फिर पतन होता ही चला जायगा। पक्का पश्चात्ताप हो जाय कि अब ऐसा काम नहीं करेंगे, इसपर डटा रहेगा तो उसका अन्तःकरण शुद्ध हो जायगा, निर्मल हो जायगा। जितना पश्चात्ताप अधिक होगा, और जितना अपना विचार पक्का होगा, उतनी जल्दी अन्तःकरण शुद्ध होगा। ये दो चीजें बहुत दामी है, बड़ी श्रेष्ठ हैं, अन्तःकरणको निर्मल करनेवाली, और पापोका नाश करने वाली हैं।

एक बातका ख्याल रखना है कि मनुष्य स्वयं परमात्माका अंश है, स्वयं दोषी नहीं है, यह संयोगजन्य सुख लेनेसे ही दोषी बनता है। अपना अभिमान और कामना, ये दो महान् पतन करनेवाले हैं और इनसे लाभ कोई होनेवाला नहीं हैं। तो खूब समझनेकी बात है। हमारे इस बातका विचार आता है मन में, कि भाई लोग ध्यान नहीं देते। संसारसे सुखकी कामना और लोभ रहता है कि मेरे लाभ हो जायगा, इतना ले लूँ, इतना रख लूँ, इतना मार लूँ इससे मेरे सुख हो जायगा– ऐसा भाव है, इसके समान धोखा देनेवाला कोई बैरी है ही नहीं। इतना इससे धोखा खाता है। सज्जनो! आपके जचे, न जचे; पर यह बात मेरी विचारी हुई है कि लाभ कोई-सा ही नहीं है और नुकसान बहुत भारी है। परन्तु मनुष्यको उसमें लाभ दिखता है और नुकसान नहीं दिखता– यह अवस्था है।

करहिं मोह बस नर अघ नाना।
स्वारथ रत परलोक नसाना।।

(मानस ७/४०/२)

धन भी चला जायगा। ममतावाली वस्तुओंको रखनेकी ताकत किसीकी हो तो बोलो! तात्पर्य यह हुआ कि यह पहले थी नहीं, आगे रहेगी नहीं और अभी भी उसके ऊपर आपका आधिपत्य चलता नहीं। उसके परिवर्तन करनेमें आप समर्थ नहीं। अनुकूल बनानेमें समर्थ नहीं, रखनेमें समर्थ नही। पहले भी अपनी थी नहीं, और छूट जायगी जरूर– यह पक्की बात है।

हरएक बातमे सन्देह होता है। आप ऐसा करें। ऐसा हो भी जाय और न भी हो। अमुक जगह जाना है, अमुक आदमीसे मिलना है, तो क्या मिल लोगे? मिल भी सकते हैं और नहीं भी। बेटे का ब्याह कर दिया तो पोता जन्मेगा इसका पता नहीं! हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है। इस प्रकार हरएक काममें होगा और नहीं भी होगा– ऐसा होता है; पर एक दिन मरना होगा और नहीं भी होगा– ऐसा विकल्प है क्या? हो भी सकता है और नहीं भी, मरे चाहे, न भी मरे– ऐसा हो सकता है क्या? जब मरना जरूरी है तो मरनेपर ममतावाली सब चीजें छूटेंगी तो अपनापन (ममता) पहले छोड़ दो, तो निहाल हो जाओगे। अन्तमे छूटेगी तो सही! क्यों माजनो (इज्जत) गुमाओ अपनी, बेइज्जतीके सिवाय क्या मिलेगा?

आप कहोगे कि ममताके बिना कुटुम्बका पालन कैसे होगा? ममताके बिना पालन ज्यादा होता है और बढ़िया होता है। एक बात याद आ गयी। वह साधु हो चाहे, ब्राह्मण हो, आपका हित ममता रखनेवाला ज्यादा कर

सामने जाकर उसने पूछा कि महाराज, आज आप कहा जा रहे है, क्या बात है? तो पण्डित जी बोले कि मुझे बडा दुःख है। ''किस बात का''? वेश्याने पूछा। उत्तर दिया कि मेरी स्त्रीने प्रश्न किया और उत्तर मुझे आया नही। इसलिए काशी जाता हूँ वहाँ पढ़ाई करूँगा। पण्डितोसे पूछूँगा। फिर आऊगा घर पर। वेश्याने पूछा कि बात क्या है? पण्डितजीने उत्तर दिया कि मेरी स्त्रीने पूछा कि पापका बाप कौन है? मै बता नहीं सका। वह बोली यह बात तो मैं बता दूंगी। आप वहा क्यों जाते है? यह तो बडी सीधी बात है, मै बता दूंगी। पण्डितजी बोले कि बहुत अच्छी बात है, हमें तो बात मिलनी चाहिए। पण्डित जी रुक गये।

अमावस्याके पहले दिन सौ रुपये भेंट कर दिए और वह बोली कि मेरी प्रार्थना है कि मेरे घरपर आप भोजन कर लें, भोजन चाहे आप स्वयं बना ले। पण्डितजीने विचार किया कि इसमें दोष क्या है? स्वीकार कर लिया निमन्त्रण। दूसरे दिन पण्डितजी चले गए। उसने भोजनकी सारी सामग्री तैयार कर ली। चौका देकर, रसोई साफ करके सामग्री सामने रख दी और वेश्याने सौ रुपये और पण्डितजीके सामने रखे और कहा कि महाराज! आप पक्की रसोई तो दूसरेके हाथकी पाते ही है, मैं बना दूं अच्छी तरहसे। इतनी मुझपर कृपा हो जाय। पण्डितजीने सोचा कि पक्की रसोई पानेमें क्या है? पक्की रसोई पाते तो है ही, चलो इसके हाथकी पा लेंगे। वेश्याने

खीर, मालपुआ, पूरी, साग आदि सब ठीक तरहसे बना लिये।

रसोई बनकर तैयार हो गई तो कहा, पण्डित जी महाराज! अब पावो। उनके सामने रसोई परोस दी। सामने लाकर सौ रुपये रख दिये और बोली कि एक कृपा और हो जाय, मेरे हाथसे ग्रास ले लो। पण्डितजीने सोचा इसमे हर्ज क्या है, इसके हाथकी बनाई हुई रसोई इससे न लेकर, उसके हाथसे ले ले, इसमे फर्क क्या है? पण्डितजीने स्वीकार कर लिया। ग्रास बनाकर मुँह मे देने लगी तो जैसे ही पण्डितजीने मुँह खोला तो पण्डितजीके मुहपर जोरका थप्पड मारा और बोली कि अभी तक होश नहीं आया, खबरदार मेरा एक भी दाना खाया तो। मै आपका धर्म-भ्रष्ट नही करना चाहती। आपके शंका थी न कि पापका बाप कौन है? शास्त्रोमे वैश्याका अन्न कितना निषिद्ध लिखा है! आपने पढा है? "पढ़ा तो है"— पण्डितजी बोले। तो आप कैसे तैयार हो गए खाने के लिए? और वह भी मेरा बनाया हुआ, और मेरे ही हाथ से। कारण क्या है? आपको पता नही लगा, यह जो लोभ है न, यही पापका बाप है।

गीताजीने (२/४४ मे) दो आसक्तियाँ बताई— "भोगैश्वर्यप्रसक्तानाम्" सुखभोग और संग्रह इनमे एक-एकसे आदमी अन्धा हो जाता है। अगर दोनों हो जाय, फिर तो उसका कहना ही क्या है। पूछा गया कि मनुष्य ऐसा क्यो करता है? वह लोभमें आकर करता है।

सुख-आराम मिले और धन मिल जाय, ऐसी चाहना होनेपर फिर चाहे जो पाप करवा लो। दवाईके नामसे चाहे जो चीज खिला दो और व्यापारके नाम से चाहे जो काम करवा लो। सुना है कि सनातन धर्मके आदमियोंने माँस सप्लाई तक किया मिलट्रीके लिये। अब व्यापार है, राम! राम! राम! भीतर लोभ है कि रुपया आ जाय तो उसके लिये क्या-क्या अनर्थ करते हैं लोग! रोंगटे खडे हो जायँ अगर विचार करके देखें तो ऐसे अन्याय करते है। और है क्या? यह धन कितने दिन ठहरेगा? आप कितने दिन जीवेंगे? परन्तु पापकी गठरी तो बांध ही लेता है। सन्त लोग कहते हैं कि तू थोड़ा-सा डर तो सही।

पाप कर्मसे डर रे मेरा मनवा रे।

मन तू पाप कर्मसे डर। तू व्यर्थमें अनर्थ करता है, लोगोंका माल मारता है और भोग भोगता है। निषिद्ध रीतिसे सुख भोगता है। थोड़ा-सा विचार कर, मनुष्य शरीर मिला है तेरेको। अच्छी-अच्छी बातें सुनने, कहनेका मौका मिलता है, फिर भी तू ऐसा करता है। भाइयो, सज्जनो! दुनियाका उद्धार हो सकता है, परन्तु ऐसे आदमीका उद्धार नहीं होगा जो महान् अपराध करता है फिर पूछते हैं कि वैराग्य क्यों नहीं ठहरता? वैराग्य कैसे ठहरे? जब राग ऊपर चढ़ा हुआ है, भोग-इच्छा भीतर पड़ी हुई है। वैराग्य कैसे टिके? वहाँ वैराग्य नहीं टिकेगा। विरुद्ध अवस्था है यह। राग के

वशीभूत होकर निषिद्ध आचरणसे भी बचता नहीं। भाई, अगर आप दुर्गतिसे बचना चाहते हैं, नरकों से बचना चाहते हैं, चौरासी लाख योनियोंसे बचना चाहते है, महान-महान् कष्टोसे बचना चाहते है, तो आजसे अभीसे विचार कर लें कि दूसरोंका हक नहीं लेगे। किसी रीतिसे ही लिया हो, वह ब्याजसहित उसको पूरा-का-पूरा दे दें। दूसरेका हक मारनेका भाव भीतरसे सदा के लिए उठा दो। जीवन निर्मल बना लो सज्जनो! तब तो ये पारमार्थिक बातें समझमें आने लग जायगी। आचरणमें आने लग जायेगी। परन्तु जब तक नीयत खराब होगी, तब तक ये बातें समझमें नही आ सकती। याद कर लो, दूसरोको सुना दो, परन्तु जब तक पाप विराजमान है भीतर, तब तक कुछ नहीं होगा। इसलिये कम-से-कम, कम-से-कम सबसे पहले यह निश्चय कर लो कि अन्यायपूर्वक भोग नहीं भोगेंगे और अन्यायपूर्वक संग्रह नहीं करेंगे। निषिद्ध कर्मोंका त्याग सबसे पहला त्याग है।

''त्यागसे भगवत्प्राप्ति'' पूज्य श्रीसेठजीका लेख है उसमें सबसे पहला त्याग निषिद्ध कर्मोंका त्याग है— झूठ, कपट, जालसाजी, बेईमानी, अभक्ष्य-भक्षण आदि-आदि ये निषिद्ध आचरण शरीरसे, मनसे, कभी नहीं करना चाहिए। यह पारमार्थिक मार्गमें कलंक है। क्या पहले कलंकका भी त्याग नहीं कर सकते? हृदयसे त्याग कर दो। भीतरसे त्यागका भाव मुख्य है इतना होनेपर भी किसी कारणसे कभी कोई पाप या दोष हो

जाय तो जलन पैदा हो जायगी यह इसकी पहिचान है। अशान्ति हो जायगी। उस जलनमे यह ताकत है कि आगे दुबारा पाप नहीं होगा। पक्का विचार कर लें कि अब नही करेंगे। हे नाथ! ऐसा बल दो, ऐसी शक्ति दो कि आपकी आज्ञाके विरुद्ध कोई काम न करे। तो भगवान् मदद करते है, धर्म मदद करता है, शास्त्र मदद करते है, सन्त-महात्मा मदद करते है। सच्चे हृदयसे परमात्माकी तरफ चलने वालेपर दुनिया मात्र कृपा करती है और मदद करती है। सभी मदद करते है, उसकी सहायता करते है।

एक सन्त मिले थे, अन्धे थे। उन्होंने कहा कि मुझे वैराग्य हुआ और बाहर जगलमे रहता था। ठंडक आ गई तो एक भक्तने बढ़िया कम्बल दे दी। वह एक कम्बल ही मेरे पास बढिया थी और कोई चीज बढिया नही। रात्रिमे एकान्त था तो कुछ आदमी पासमें आये, शब्द सुनाई पड़ा, उनकी वाणी सुनी। मनमे विचार किया कि न जाने डाकू है कि चोर हैं, न जाने कौन है? मेरे पास यह कम्बल है इसे देखकर ये ले जायेगे तो पहले अपने ही इनसे बात कर लो। तो उनसे बोले कि भाई बोलो कौन हो, क्या बात है? उन्होने आकर देखा कि ये तो बाबाजी है। ऐसा देखकर बोले कि महाराज! आप सन्त है, इसलिये हम आपसे सच्ची बात कह देते है कि हम चोरी करने जा रहे हैं हमारा पेशा चोरी करनेका नही है, हम तो गृहस्थ है। अपना कमाकर खाने वाले है परन्तु राज्य का लगान बहुत बढ़ गया है, वह दे नही सकते, इसलिये हम चोरी करने

जा रहे है। सन्तने कहा कि भैया चोरी करना अच्छा नही है। उन्होने कहा कि हम भी अच्छा नहीं समझते, परन्तु करे क्या? इतना लगान कहाँसे दे? हमारे पास है नहीं। उनसे इतनी बातकी, पर बाबाकी कम्बल नहीं ली। आदमी लोभमे ऐसा करता है, लोभमे चोरी करे, दूसरोंको दु.ख दे, धन मार ले, कितनी पापकी बात है, कितनी अन्याय की बात है! ये एक विलक्षण बात है कि निर्धन होनेपर भी, आफत आनेपर भी पाप न करे। दु.ख पा ले, पर पाप न करे, अन्याय न करे।

सिबि दधीच हरिचन्द नरेसा।
सहे धरम हित कोटि कलेसा।।

(मानस २/९४/२)

धर्मके लिये करोडो कष्ट सह लिये। पर अपने धर्मसे विचलित नही हुए।

धीरज धर्म मित्र अरु नारी।
आपद काल परिखिअहि चारी।।

(मानस ३/४/४)

इनकी परीक्षा आपत्तिके समय होती है। मनुष्यके लिये बहुत ही आवश्यक है कि धैर्य खोवे नही। जोरसे हवा आती है कभी-कभी, तो बडे-बडे वृक्ष टूट जाते है। पर उस हवामे भी जो ठीक रह जाय तो फिर वह मौजसे रहता है कोई खतरा नही। इसी तरह काम, क्रोध, लोभ आदिकी हवाका झौका मिट जाता है, तो फिर ठीक हो

जाता है। थोड़ा-सा धैर्य रखें। कैसी भी आफत आ जाय पाप नहीं करेंगे, अन्याय नहीं करेंगे, शास्त्र-निषिद्ध आचरण नहीं करेंगे, भूखे मरेंगे तो मर जायेंगे और क्या होगा, बताओ? पासमें कुछ नहीं है तो भूखे मर जायेंगे, इसके सिवा दण्ड होगा नहीं। पाप करोगे तो नरकोंमें जाना पड़ेगा और चौरासी लाख योनियोंमें भटकना पड़ेगा यह बात स्वीकार कर ले तो उससे कोई शक्ति कभी पाप करवा नहीं सकेगी।

शास्त्रोंमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनोके अस्त्रोंका वर्णन आता है। ब्रह्माजीका ब्रह्मास्त्र है, भगवान् विष्णुका नारायणास्त्र है और शिवजीका पाशुपतास्त्र है। ये मन्त्रोंके प्रयोगसे चलते हैं। ब्रह्मास्त्र जिसपर छोड़ दिया जाता है तो उसे खत्म कर देता है। ब्रह्मास्त्रका उपाय है उसका उपसंहार करना। मन्त्रोंसे उसको उल्टा लेनेसे वह आगे दखल नहीं देता। नारायण अस्त्र छूट जाता है तो वह भी खातमा कर देता है। उसका उपाय है कि शरण हो जाय, लम्बे पड़ जाय। शरण ले लेनेसे वह नारायण अस्त्र नहीं मारता है। परन्तु पाशुपतास्त्र छोड़नेपर चाहे कुछ भी करो, खत्म ही करेगा। भले ही शरण हो जाओ, भले ही कुछ भी करो। वह तो संहार करेगा ही। पाशुपतास्त्र बहुत कम आदमियोंके पास है। महाभारतका युद्ध हुआ, उसमें भगवान् शंकरका दिया हुआ पाशुपतास्त्र अर्जुनके पास था, भगवान् शंकरने कह दिया कि तुम्हे चलाना नहीं पड़ेगा। यह तुम्हारे पास

पडा-पडा विजय कर देगा, चलानेकी जरूरत नही, चला दोगे तो संसारमे प्रलय हो जायगी। इसलिये चलाना नही।

सज्जनो! ऐसे आपको पापसे बचनेके लिये पाशुपतास्त्र बताता हूँ, आप कृपा करके सुने और उसे धारण कर लें, बडी भारी कृपा मानूँगा। वह क्या कि मर जायेंगे पर पाप नही करेगे, अन्याय नही करेंगे! नहीं करेगे! नही करेगे! ऐसा आपका केवल विचार हो जाय। ऐसा करनेसे आप बिना अन्नके मर जाओगे यह बात होगी नही। अन्नके बिना मरना पडे तो भी परवाह नही, पर पाप-अन्याय नहीं करेगे। यह है अस्त्रका चलाना। यह चलाना नहीं पडेगा। पक्का विचार पडा-पड़ा आपकी विजय कर देगा। हमे मौत स्वीकार है, आफत स्वीकार है, पर पाप स्वीकार नही है, ऐसा पक्का विचार होनेपर आपसे कोई पाप करवा नही सकता, अन्याय करवा नही सकता। किसीकी ताकत नही कि अन्याय करवा ले। साथमें रखिये भगवान् का भरोसा। याद करते रहो कि नाथ! यह बात तो मेरी है, पर बल आपका है। इस बातके निभानेमे बल आपका होगा, तब होगा काम। अर्जुन को भगवान्ने कहा कि तू निमित्त मात्र बन जा।

निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्।

(गीता ११/३३)

निमित्त मात्र तो मै बन जाता हूँ, परन्तु यह काम कर लेना

ठीक तरहसे यह मेरी ताकतके बाहरकी बात है। हे नाथ! आप निभाओ। "**उस सेवक की लाज, प्रतिज्ञा राखे साईं**", "**आछी करे सौ रामजी**" रामजी जो करते हैं अच्छी करते हैं, भगवान्‌के द्वारा अपना अच्छा-ही-अच्छा होता है, रक्षा होती है, सहायता होती है, फायदा होता है, नुकसान होता ही नहीं।

"**भूंडी बनै सौ आपकी**"– भूंडी (बुरी) तो आपकी है, खुदकी है, खराब खुद करता है अगर खुद तैयार नही होता तो कोई नही करवा सकता। कानूनने ऐसा कर दिया, लोगो ने ऐसा कर दिया, कुसंग ने ऐसा कर दिया, वायु-मण्डल ऐसा ही आ गया, हमारा भाग्य ऐसा ही था, संग अच्छा नहीं मिला, गुरु नहीं मिले आदि-आदि बातें सब बहानेबाजी है और कुछ नहीं। कोई भी किञ्चिन्मात्र भी आपका बिगाड़ कर नंहीं सकता, जब तक आप बिगाड़के लिए तैयार न हो जायें और उसमें भी अपना विचार पक्का रखे और सहारा भगवान्‌का हो। भीतरसे पुकारता रहे प्रभुको कि हे नाथ! बिना आपकी कृपाके हमारेसे नहीं होगा यह। ऐसे कृपाका भरोसा हो तो उसका पतन कभी हो नहीं सकता।

भगवान्‌के चरणोंकी शरण लेनेसे भगवान् कहते हैं–

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।

(गीता १८/६६)

सब पापोसे मैं मुक्त कर दूँगा। तू चिन्ता मत कर।

"**मामेकं शरणं व्रज**" शर्त यह है। शरण यदि धनकी लेगा, झूठ, कपट, बेईमानीका आश्रय रखेगा, तो भाई, मेरे हाथकी बात नहीं। मनुष्य क्या करता है? झूठ, कपट, बेईमानीका सहारा लेता है।

आज कहा जाय कि पाप मत करो। तो लोग कहते है कि महाराज आजकलके जमानेमे यह नही चल सकता। यह आपकी बात पुराने ढंगकी है, पुराने जमानेकी। इस जमानेमें ऐसा नही चल सकता। ऐसा करे, तो भूखो मर जायेंगे। जी नहीं सकते। आज सच्चाईके साथ कैसे करे? लाख रुपया कमाते है तो लगभग आधा टैक्सका देना पडता है। हमें एक भाई ने कहा है कि अब बताओ क्या कमावे, क्या खावें? इस जमाने मे मनुष्य सच्चाईसे काम नही कर सकता। हम कहते है कि सरकार कृपा कर रही है कि लोभके वशीभूत होकर ज्यादा संग्रह मत करो। क्रियात्मक उपदेश दे रही है। साधारण खर्चा करो, साधारण कमाओ और खाओ। उससे पाप कोई नही करवा सकता। कुछ रुपये कमाने तक छूट है न टैक्स की? उतनेके भीतर-भीतर कमाओ। कहते है खर्चा कहा से लावे, छोरीका ब्याह कैसे करे? मुश्किल हो जाती है, सभ्यता है। सभ्यताको तिलाजलि दे दो, पानी दे दो, पानीमे खड़े होकर! हमे वह सभ्यता नही रखनी। हमारी बेइज्जती हो जाय, उससे डरेगे नही। पुण्य करते हुए, शुभ काम करते हुए, धर्मके ऊपर चलते हुए अगर लोग निन्दा करें, तो करो।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
(गीता १६/२१)

अपना पतन करनेवाले काम, क्रोध और लोभ– ये तीन प्रकारके नरकोके दरवाजे है। इनमे प्रविष्ट हो गया, वह तो नरकोंमे ही जायगा। यदि भगवान्‌को याद करे कि अब ऐसा नही करेंगे तो नही जायगा। जब कभी सुधर जाय उमर भरमे, जब कभी चेत हो जाय और विचार पक्का हो जाय कि पाप कभी नही करूँगा, तो पूरा प्रायश्चित हो जायगा। भगवान्‌की कृपासे उसको बल भी मिल जायगा, धर्म मिल जायगा और वह सन्त बन जायगा। ऊपरसे वह भाई हो चाहे बहिन हो, गृहस्थ हो या कुछ भी हो, भगवान् तो भीतरका भाव देखते है "**भावग्राही जनार्द्दनः**" वे भाव भोक्ता है। भाव जिसका निर्मल हो गया, वह तो निर्मल हो ही गया। केवल बाहरसे निर्मल होनेसे, अच्छा बननेमे देरी लगती है, पर यह भाव हो जाय कि हम पाप नहीं करेगे, इतनेमे बहुत जल्दी शुद्ध हो जाता है।

"**व्यवसायात्मिका बुद्धिरेका**" निश्चय कर लिया कि पारमार्थिक मार्गमे ही चलना है, कुछ भी हो जाय। "**अपि चेत्सुदुराचारः**"–पापी से पापी हो तो उसे भी "**साधुरेव स मन्तव्यः**"– साधु ही मानना चाहिए, क्योकि "**सम्यग्व्यवसितो हि सः**"– उसने पक्का निश्चय कर लिया। उस भावके अनुसार वह पवित्र हो जाता है।

रहति न प्रभु चित चूक किए की।
करत सुरति सय बार हिए की।।

(मानस १/२८/३)

पहले दोष बन गए, उन बातोको भगवान् याद नही करते। जिसका भाव अच्छा है और इधर चलना चाहता है, भगवान् उसे सौ बार याद करते हैं कहीं उसे भूल न जाऊँ। ऐसे प्रभुके रहते हुए भय किस बातका? सच्चे हृदयसे पापका त्याग कर दो। अभी तो लोभमे आकर पाप कर बैठते है; परन्तु आगे दशा क्या होगी? इसका कुछ विचार किया है? धन यहीं रहेगा, सम्पत्ति यहीं रहेगी, पर आप जावोगे। उम्र भरमें खर्च कर सकोगे नहीं। पापसे कमाया हुआ धन खर्च नहीं किया जायगा, बाकी बचेगा और पाप किया हुआ कर्म पीछे नहीं रहेगा, साथ चलेगा और महान् दण्ड भोगना पड़ेगा। समझदार आदमीको तो जल्दी चेत कर लेना चाहिए, इसलिये केवल विचार हो जाय कि अब पाप नहीं करेंगे अन्याय नहीं करेंगे।

नारायण! नारायण! नारायण!

।।श्रीहरिः।।

संसारमें रहनेकी विद्या

वास्तवमें अभिमान और ममताका त्याग कठिन है। परन्तु एक बात आपको बताई जाती है, भाई-बहिन अपने-अपने घरोमे उसका अनुष्ठान करें, उसके अनुसार जीवन बनायें, तो बहुत सुगमता से अभिमान और ममताका त्याग हो सकता है। घरों में प्रायः दो बातोंको लेकर लड़ाई होती है। काम-धन्धा तो तुम करो और चीज-वस्तु मैं लूँ। आराम, आदर, सत्कार, सब कुछ मेरेको मिले। काम-धन्धा और खर्च तुम करो। इन बातोंको लेकर खटपट चलती है। अगर इनको उलट दिया जाय अर्थात् काम-धन्धा मैं करूँ, आराम आप करो। आदर-सत्कार, मान-प्रशंसा— ये लेनेकी नहीं देने की हैं तो, दूसरोंका आदर करें, मान दे, आराम दें, सत्कार करें, उनकी आज्ञा पालन करें, उनको सुख पहुँचायें, ऐसे आपसमें किया जाय तो प्रेम बढ़ता है।

मनुष्यका स्वभाव है कि वह अपने मनकी बात पूरी करना चाहता है, और अपने मनकी होने से राजी होता है। धनकी, मानकी, बड़ाईकी, जीनेकी कामना होती है। परन्तु इन कामनाओंमें मूल कामना यह है कि मेरे मनकी

बात हो जाय। यह बात बढ़िया नही है। अपने मनकी बातका आग्रह छोडकर औरो के मनकी बात करता चला जाय तो निहाल हो जाय। केवल दो बातोका ख्याल करना है कि उनकी बात न्याय युक्त हो, और अपनी सामर्थ्यमे हो। इसका एक सरल उपाय है। यह निश्चय कर ले कि हमें ससारसे लेना नही है– ससारकी सेवा करनी है। क्यो करनी है? क्योकि पहले लिया है इसलिये अब देना है। ससारको देना है, ससारसे लेना नही है।

एक मार्मिक बात बताये आप को ध्यान देकर सुने। मानव शरीर परमात्माकी प्राप्तिके लिये मिला है। संसारमे रहनेकी एक रीति है। उस रीतिको हम धारण करे, तो परमात्माकी प्राप्ति बहुत सुगमतासे हो जाय। हरेक काम करनेकी एक विद्या होती है, यदि उसके अनुसार काम करते है तो वह काम पूरा हो जाता है। ससारमे रहनेकी भी एक विद्या है तो उस विद्याको भी जानना चाहिये। उस विद्याको काममे ले तो बड़ी सुगमतासे संसारमें रहेंगे और संसारको पार कर जायेंगे। वह विद्या क्या है? जिसने जिसके साथ जो सम्बन्ध मान रखा है, उसके अनुसार बडी तत्परतासे अपने कर्तव्यका पालन करे, और उससे अपनी कोई भी इच्छा न रखे, कामना न रखे, वासना न रखे। अपने लेना नही है, देना है। यह शरीर है, संसारसे सुख लेनेके लिये नहीं मिला है।

एहि तन कर फल ब्रिषय न भाई।

शरीरका फल तो सेवा करना है। माताके लिये पुत्र बनो तो सपूत बनो। मांकी सेवा करना है। माता के पास जो रुपये हैं, गहने-कपड़े है, तो यही कहो कि माँ, जो तुम्हारे पास है उसे हमारी बहिनको दे दो। छोटे भाई या बडे भाईको दे दो। मेरे ऊपर तो एक ही कृपा करो कि सेवा मेरेसे ले लो। माँ-बापकी सेवासे आदमी उऋृण नहीं हो सकता। उनका जितना भी ऋण हमारे ऊपर है, उसे हम चुका नही सकते। ऋण को अदा नही कर सकते। कोई उपाय नहीं है। तो क्या है? सेवा करके उनकी प्रसन्नता ले लो। प्रसन्नता लेनेसे वह ऋण माफ हो जाता है। माँने जितना कष्ट सहा है, बालक उतनी माँकी सेवा नहीं कर सकता। सब कुछ माँने दिया। कोई कहे कि मै मेरे चमडेकी जूती बना कर माँको पहना दूँ। कोई उनसे पूछे। यह चमडा भी बाजारसे लाये हो क्या? यह तो माँका ही है। इसपर तू अधिकार क्या करता है? माँसे मिला है। आज हम बड़ी-बड़ी बातें बनाते हैं। लोगोंमे विद्वान्, सज्जन कहलाते है, यह शरीर मिला किससे है? माँसे मिला है। माँ से पालन हुआ है।

आप कितने भी विद्वान हो जायँ। बचपनमे बैठना नही आता था, माँने बैठना सिखाया। चलना सिखाया, ऊंगली पकड़कर। भोजन करना नहीं आता था, माँने बिठा कर मुखमें ग्रास दिया। भोजन करना सिखाया। यह दशा थी बहिनोंकी, और भाइयोंकी भी। उस अवस्थामे माँने पालन किया और बड़े-बड़े कष्ट सहे। खेलमें

इधर-उधर जाते तोड़-फोड करते, वृक्षोमें उलझते, बिच्छूको भी पकड़नेको दौडते, आगमें हाथ डालना चाहते। मॉने रक्षा की। टट्टी-पेशाब करते उसमे ही लकीरे खीचने लगते। अब ऐसा देख कर मन खराब होता है। उस समय होश नही था कुछ भी, यह सब मॉ ने ज्ञान कराया। बड़ी विलक्षणतासे पालन किया।

कभी-कभी भाई लोग अभिमानमे आकर कह देते है कि क्या बडी बात है। उनसे मै कहता हूॅ कि बच्चेको दो दिन गोदमे रख कर देखो। मॉमे मातृत्व-शक्ति है तब हमारा पालन हुआ। इसलिये जितनी अपनी सामर्थ्य हो मॉ-बापकी सेवा करो। जो नही जानते, कृपा कर उन्हे समझाओ कि बड़ोका आदर करो। जो मॉ-बापका आदर नही करते, उनका भगवान् भी आदर नही करते। कोई उनका विश्वास नही करते, क्योकि जो मॉ-बापका नही है, वह किसका होगा? मॉ-बापकी सेवा करनेसे भगवान् राजी होते हैं। आज्ञा पालन करनेसे सिद्धि प्राप्त होती है। अर्थात् परमात्माकी प्राप्ति होती है। इस कारण भाई-बहिनोंको आज्ञा पालन करना चाहिये। आज्ञा पालनसे क्या होगा? उनकी सेवा होगी और हम निरहंकार हो जायेंगे। चीज-वस्तुओंसे उनकी सेवा करनेसे निर्मम हो जायेगे। जितनी-जितनी चीजोको सेवामें लगा देगे, उतनी ही उनसे ममता दूर हो जायगी और जितना परिश्रम करोगे उतना अपना अहंकार नष्ट हो जायगा। आराम बुद्धि, और अपनेमें बडप्पनका

अहंकार पतन करनेवाले हैं। संसारकी सेवा करते-करते अभिमानको सुगमतासे दूर कर सकते हो। ऐसे ही समान उम्र वालोंकी सेवा करो। छोटी अवस्था वाले हैं, उनकी भी सेवा करो। छोटोंका पालन-पोषण करना भी सेवा है। सदाचारकी शिक्षा देना भी सेवा है। वे उम्र भर सुख पायेंगे, इसलिये बालकोंको अच्छी शिक्षा दो। बेटा-बेटीको अच्छी शिक्षा दो, जिनसे वे अच्छे बन जायँ।

ये माताएँ चाहें तो संसारका कल्याण कर सकती हैं, क्योंकि हम जितने भाई-बहिन हैं, ये सबसे पहले माँकी गोदमें आते हैं। माँकी गोदमे खेलते हैं। मॉका दूध पीते हैं। माँके स्वभावका असर पड़ता है। महिलायें जैसी प्रकृति- (स्वभाव-) की होगी, वैसे ही बालक-बालिकाये होंगे बच्चे वैसे ही नागरिक बनेंगे बड़े होकर, वैसा ही वह देश बनेगा। माँ छोटी अवस्थामें जो शिक्षा देती है, वह बहुत काम करती है; क्योंकि बचपनमें पड़े हुए संस्कार बहुत काम करते हैं। अतः मातायें चाहें तो देशका बड़ा सुधार कर सकती हैं। माताओंमें मातृत्व-शक्ति होती है, ये उसका उपयोग करें। भगवान्‌ने इन्हें शक्ति दी है। ये छोटी-छोटी बालिकायें हैं, ये भी अपने भाई-बहिन का जैसा पालन करती हैं बड़े लड़के अपने भाई-बहिनका वैसा पालन नहीं करते। आप छोटे भाई-बहिनको बड़े भाईकी गोदमें देकर देख लो, बहिनें बड़े प्यारसे पालन करती हैं। बहिनें अपनी चीजें भी छोटे भाई-बहिनोंको खिला देंगी। भाई अपनी आप खा जायगा और उनकी भी

खा जायगा। बालिकाओंके हृदयमें यह भाव नहीं आता कि यह चीज तो मेरी है। मैं क्यों दूँ? तो यह भाव क्यों नहीं आता ? उसको पालन-पोषण करनेकी शक्ति भगवान्‌ने दी है, यह शक्ति माँ बननेके लिये दी है। यह जो शक्ति इन्हे दी है, यदि वे इस शक्तिका उपयोग करें तो बहुत सुगमतासे निर्मम हो सकती हैं।

इसका कारण यह है कि सबका पालन-पोषण करना, सबकी रक्षा करना और सबको सुख देना इनसे ममता दूर होती है। सेवा करनेसे अभिमान दूर होता है। यह बड़े ऊँचे दर्जेकी बात कही गई है। अगर यह व्यवहारमें आ जाय तो काम बन जाय। काम-धन्धा ठीक करें। चीजोंको उदारतासे बरतें। औरों को देवें। दोका आदर विशेषतासे होता है। एक तो जो उपकार करते हैं और दूसरे जो बड़े-बूढ़े पूजनीय होते हैं। बडे-बूढ़े है, उनका आदर करें, आज्ञा मानें। जो दीन हैं, रोगी है, अभावग्रस्त हैं, उनकी सेवा करें। दीन-दुःखियोंमें भगवान् रहते हैं। यदि उनकी सेवा की जाय तो आपकी सेवा स्वीकार करनेके लिये भगवान् तैयार हैं। दीन-दुःखियोंसे घृणा मत करो। द्वेष मत करो। ईर्ष्या मत करो। अपनेमें अभिमान मत लाओ कि हम बड़े हैं। वास्तवमें आपमें जो बड़प्पन है, यह बड़प्पन उन छोटे आदमियोंका दिया हुआ है।

इसलिये उन गरीबों को देनेसे धनका सदुपयोग होता है। धन होते हुए भी धनवत्ताका सुख देनेवाले गरीब हैं।

ारणागतकी इस तरफ दृष्टि हो जाय तो फिर उसके लिये कुछ करना बाकी नही रहता।

जो मनुष्य सच्चे हृदयसे प्रभुकी शरणागतिको स्वीकार कर लेता है तो उसका यह शरण-भाव स्वत ही दृढ होता चला जाता है।

भगवान् भक्तके अपनेपनको ही देखते है, उसके गुण-अवगुणोंको नही देखते अर्थात् भगवान्‌को भक्तके दोष दीखते ही नही।

शरणागत भक्त— "मै भगवान्‌का हूँ और मेरे भगवान् हैं" इस भावको दृढ़तासे पकड़ लेता है तो उसकी चिन्ता, भय, शोक, शका आदि दोषोकी जड कट जाती है, अर्थात दोषोंका आधार कट जाता है। क्योकि सभी दोष भगवान्‌की विमुखतापर ही टिके हुए रहते है।

भगवान्‌के शरण होकर ऐसी परीक्षा न करे कि जब मै शरण हो गया हूँ, तो ऐसे लक्षण मेरेमे नही है तो मै भगवान् के शरण कहाँ हुआ?

इस प्रकार सन्देह, परीक्षा और विपरीत भावना— इन तीनोंका न होना ही भगवान्‌के सम्बन्धको दृढतासे पकडना है। शरणागत भक्तमे तो ये तीनो ही बाते आरम्भमे ही मिट जाती है।

मनुष्य जब भगवान्‌के शरण हो जाता है, तो वह प्राणियोसे, सम्पूर्ण विघ्न-बाधाओसे निर्भय हो जाता है। उसको कोई भी भयभीत नहीं कर सकता। उसका कोई भी कुछ बिगाड़ नहीं सकता।

जीवका उद्धार केवल भगवत्कृपासे ही होता है। साधन करनेमें तो साधक निमित्त मात्र होता है, परन्तु साधनकी सिद्धिमें भगवत्कृपा ही मुख्य है। इस दृष्टिमें भगवान्के साथ किसी तरहका सम्बन्ध जोड लिया जाय, वह जीवका कल्याण करनेवाला है। जिन्होंने किसी प्रकार भी भगवान्से सम्बन्ध नही जोड़ा, उदासीन ही रहे, वे तो भगवान्की प्राप्तिसे वंचित ही रह गये।

भगवान्का अनन्त ऐश्वर्य है, माधुर्य है, सौन्दर्य है, भगवान्की अनेक विभूतियाँ है, इन सबकी तरफ शरणागत भक्त देखता ही नहीं। वह तो केवल भगवान्के शरण हो जाता है और उसका केवल एक भाव रहता है कि मैं केवल भगवान्के शरण हूँ, और केवल भगवान् मेरे हैं। शरणागतकी दृष्टि तो केवल भगवान्पर ही रहनी चाहिये, भगवान्के गुण, प्रभाव आदिपर नही।

प्राणी ज्यो-ज्यों दूसरा आश्रय छोड़ता जाता है, त्यों ही त्यों भगवान्का आश्रय दृढ होता चला जाता है, और ज्यों भगवान्का आश्रय दृढ़ होता है, त्यों ही भगवत्कृपा का अनुभव होने लगता है। जब सर्वथा ही भगवान्का आश्रय ले लेता है तो भगवान्की पूर्ण कृपा उसको प्राप्त हो जाती है।

भगवान् गीता (१८/५७) में अर्जुनसे कहते हैं कि चित्तसे सम्पूर्ण कर्मोंको मेरेमें अर्पण करके तू मेरे परायण हो जा और समताका आश्रय लेकर मेरेमे चित्त वाला हो जा। इस श्लोकमें भगवान्ने चार बाते बतायी– (१)

संपूर्ण कर्मोंको मेरे अर्पित कर दे। (२) स्वयंको मेरे अर्पित कर दे (३) समताका आश्रय लेकर ससारका सम्बन्ध विच्छेद कर ले, और (४) तू मेरे साथ अटल सम्बन्ध कर ले। शरणागतके लिए ये बातें आवश्यक है।

साधन कालमें जीवन-निर्वाहकी समस्या, शरीरमें रोग आदि विघ्न बाधाएं आती हैं परन्तु उनके आनेपर भी भगवान्‌की कृपाका सहारा रहनेसे साधक विचलित नहीं होता। उन विघ्न बाधाओमे भी उसको भगवान्‌की विशेष कृपा ही दीखती है।

नारायण! नारायण! नारायण!

जीवका उद्धार केवल भगवत्कृपासे ही होता है। साधन करनेमे तो साधक निमित्त मात्र होता है, परन्तु साधनकी सिद्धिमें भगवत्कृपा ही मुख्य है। इस संसारमें भगवान्‌के साथ किसी तरहका सम्बन्ध जोड लिया जाय वह जीवका कल्याण करनेवाला है। जिन्होने किसी प्रकार भी भगवान्‌से सम्बन्ध नही जोडा, उदासीन ही रहे, वे तो भगवान्‌की प्राप्तिसे वंचित ही रह गये।

भगवान्‌का अनन्त ऐश्वर्य है, माधुर्य है, सौन्दर्य है, भगवान्‌की अनेक विभूतियाँ हैं, इन सबकी तरफ शरणागत भक्त देखता ही नही। वह तो केवल भगवान्‌के शरण हो जाता है और उसका केवल एक भाव रहता है कि मै केवल भगवान्‌के शरण हूँ, और केवल भगवान् मेरे है। शरणागतकी दृष्टि तो केवल भगवान्‌पर ही रहनी चाहिये, भगवान्‌के गुण, प्रभाव आदिपर नहीं।

प्राणी ज्यो-ज्यों दूसरा आश्रय छोड़ता जाता है, त्यों ही त्यो भगवान्‌का आश्रय दृढ़ होता चला जाता है, और ज्यों ज्यों भगवान्‌का आश्रय दृढ़ होता है, त्यो ही भगवत्कृपाका अनुभव होने लगता है। जब सर्वथा ही भगवान्‌का आश्रय ले लेता है तो भगवान्‌की पूर्ण कृपा उसको प्राप्त हो जाती है।

भगवान् गीता (१८/५७) मे अर्जुनसे कहते हैं कि चित्तसे सम्पूर्ण कर्मोंको मेरेमे अर्पण करके तू मेरे परायण हो जा और समताका आश्रय लेकर मेरेमें चित्त वाला हो जा। इस श्लोकमे भगवान्‌ने चार बातें बतायी—

सपूर्ण कर्मोको मेरे अर्पित कर दे। (२) स्वयंको मेरे अर्पित कर दे (३) समताका आश्रय लेकर संसारका सम्बन्ध विच्छेद कर ले, और (४) तू मेरे साथ अटल सम्बन्ध कर ले। शरणागतके लिए ये बाते आवश्यक हैं।

साधन कालमें जीवन-निर्वाहकी समस्या, शरीरमें रोग आदि विघ्न बाधाए आती हैं परन्तु उनके आनेपर भी भगवान्की कृपाका सहारा रहनेसे साधक विचलित नहीं होता। उन विघ्न बाधाओमे भी उसको भगवान्की विशेष कृपा ही दीखती है।

नारायण! नारायण! नारायण!

जीवका उद्धार केवल भगवत्कृपासे ही होता है। साधन करनेमे तो साधक निमित्त मात्र होता है; परन्तु साधनकी सिद्धिमें भगवत्कृपा ही मुख्य है। इस दृष्टिसे भगवान्‌के साथ किसी तरहका सम्बन्ध जोड़ लिया जाय, वह जीवका कल्याण करनेवाला है। जिन्होंने किसी प्रकार भी भगवान्‌से सम्बन्ध नही जोडा, उदासीन ही रहे, वे तो भगवान्‌की प्राप्तिसे वचित ही रह गये।

भगवान्‌का अनन्त ऐश्वर्य है, माधुर्य है, सौन्दर्य है; भगवान्‌की अनेक विभूतियाँ है, इन सबकी तरफ शरणागत भक्त देखता ही नहीं। वह तो केवल भगवान्‌के शरण हो जाता है और उसका केवल एक भाव रहता है कि मै केवल भगवान्‌के शरण हूँ, और केवल भगवान् मेरे है। शरणागतकी दृष्टि तो केवल भगवान्‌पर ही रहनी चाहिये, भगवान्‌के गुण, प्रभाव आदिपर नही।

प्राणी ज्यो-ज्यों दूसरा आश्रय छोडता जाता है, त्यो ही त्यो भगवान्‌का आश्रय दृढ़ होता चला जाता है, और ज्यो ही भगवान्‌का आश्रय दृढ होता है, त्यों ही भगवत्कृपा का अनुभव होने लगता है। जब सर्वथा ही भगवान्‌का आश्रय ले लेता है तो भगवान्‌की पूर्ण कृपा उसको प्राप्त हो जाती है।

भगवान् गीता (१८/५७) में अर्जुनसे कहते है कि चित्तसे सम्पूर्ण कर्मोंको मेरेमें अर्पण करके तू मेरे परायण हो जा और समताका आश्रय लेकर मेरेमे चित्त वाला हो जा। इस श्लोकमें भगवान्‌ने चार बातें बतायी– (१)

संपूर्ण कर्मोंको मेरे अर्पित कर दे। (२) स्वयंको मेरे अर्पित कर दे (३) समताका आश्रय लेकर ससारका सम्बन्ध विच्छेद कर ले, और (४) तू मेरे साथ अटल सम्बन्ध कर ले। शरणागतके लिए ये बाते आवश्यक हैं।

साधन कालमें जीवन-निर्वाहकी समस्या, शरीरमें रोग आदि विघ्न बाधाएं आती हैं परन्तु उनके आनेपर भी भगवान्‌की कृपाका सहारा रहनेसे साधक विचलित नहीं होता। उन विघ्न बाधाओंमे भी उसको भगवान्‌की विशेष कृपा ही दीखती है।

नारायण! नारायण! नारायण!

।।श्रीहरिः।।

मनकी चंचलता कैसे दूर हो?

मनुष्यने यह समझ रखा है कि मनको कब्जेमें करना बहुत आवश्यक है। मन नहीं लगा तो कुछ नहीं हुआ। राम राम करनेसे क्या फायदा? मन तो लगा ही नहीं। मन लग जाय तो ठीक हो जाय। परन्तु मनका लगना या न लगना खास बात नहीं है। मनमें संसारका जो राग है, आसक्ति है, प्रियता है, यही अनर्थका हेतु है। मन लग भी जायगा, तो सिद्धियोंकी प्राप्ति हो जायगी, विशेषता आ जायगी; परन्तु जब तक संसारमें आसक्ति है, कल्याण नहीं होगा। जब भीतरसे राग और आसक्ति निकल जायगी, तब जन्म-मरण छूट जायगा। दुःख होगा ही नहीं; क्योंकि राग और आसक्ति ही सब दुःखोका कारण है।

पदार्थोंमें, भोगोंमें, व्यक्तियोमें, वस्तुओंमे, घटनाओंमें जो राग है, मनका खिचाव है, प्रियता है, वही दोषी है। मनकी चंचलता इतनी दोषी नहीं है। वह भी दोषी तो है, परन्तु लोगोंने केवल चंचलताको ही दोषी मान रखा है। वास्तवमें दोषी है राग, आसक्ति और प्रियता। साधकके लिये इस बातको जाननेकी बड़ी

आवश्यकता है कि प्रियता ही वास्तवमें जन्म-मरण देनेवाली है।

ऊँच-नीच योनियोंमें जन्म होनेका हेतु गुणोंका संग है। आसक्ति और प्रियताकी तरफ तो ख्याल ही नहीं है, पर चंचलताकी तरफ ख्याल होता है। विशेष लक्ष्य इस बातका रखना है कि वास्तवमे प्रियता बांधने वाली चीज है। मनकी चंचलता उतनी बांधने वाली नहीं है। चंचलता तो नींद आनेपर मिट जाती है, परन्तु राग उसमें रहता है। राग- (प्रियता-) को लेकर वह सोता है।

मेरेको इस बातका बड़ा भारी आश्चर्य है कि मनुष्य रागको नहीं छोड़ता! आपको रुपये बहुत अच्छे लगते हैं। आप मान-बड़ाई प्राप्त करनेके लिये दस-बीस लाख रुपये खर्च भी कर दोगे; परन्तु रुपयोंमें जो राग है, वह आप खर्च नहीं कर सकते। रुपयोंने क्या बिगाड़ा है? रुपयों में जो राग है, प्रियता है, उसको निकालनेकी जरूरत है। इस तरफ लोगोंका ध्यान ही नहीं है, लक्ष्य भी नहीं है। इसलिये आप इस पर ध्यान दे। यह जो राग है, इसकी महत्ता भीतर जमी हुई है। वर्षोंसे सत्संग करते हैं, विचार भी करते हैं, परन्तु उन पुरुषोंका भी ध्यान नहीं जाता कि इतने अनर्थका कारण क्या है? व्यवहारमें, परमार्थमें, खाने-पीने, लेन-देनमें सब जगह राग बहुत बड़ी बाधा है। यह हट जाय तो आपका व्यवहार भी बड़ा सुगम और सरल हो जाय। परमार्थ और व्यवहारमें भी उन्नति हो जाय।

विशेष बात यह है कि आसक्ति और राग खराब है। ऐसी सत्संगकी बातें सुन लोगे, याद कर लोगे, पर रागके त्यागके बिना उन्नति नहीं होगी। तो प्रश्न आपने किया कि मन की चंचलता कैसे दूर हो? पर मूल प्रश्न यह होना चाहिए कि राग और प्रियताका नाश कैसे हो? भगवान्‌ने गीतामें इस रागको पाँच जगह बताया है।

''इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ''।

(गीता ३/३४)

स्वयंमें, बुद्धिमें, मनमें, इन्द्रियोंमें और पदार्थोंमें—यह पाँच जगह राग बैठा है। पाँच जगहमें भी गहरी रीतिसे देखा जाय तो मालूम होगा कि ''स्वयं'' में जो राग है, वही शेष चारमें स्थित है। अगर ''स्वयं''का राग मिट जाय तो आप निहाल हो जाओगे। चित्त चाहे चंचल है, परन्तु रागके स्थान पर भगवान्‌में प्रेम हो जाय तो रागका खाता ही उठ जायगा। भगवान्‌में आकर्षण होते ही राग खत्म हो जायगा।

भगवान्‌से प्रेम हो, इसकी बड़ी महिमा है, इसकी महिमा ज्ञान और मोक्षसे भी अधिक कहें तो अत्युक्ति नहीं। इस प्रेमकी बड़ी अलौकिक महिमा है। इससे बढ़कर कोई तत्त्व है ही नहीं। ज्ञानसे भी प्रेम बढ़कर है। उस प्रेमके समान दूसरा कुछ नहीं है। भगवान्‌में प्रेम हो जाय तो सब ठीक हो जाय।

वह प्रेम कैसे हो? संसारसे राग हटनेसे भगवान्‌में प्रेम

हो जाय। राग कैसे हटे? भगवान्मे प्रेम होनेसे-दोनों ही बाते है— राग हटाते जाओ और भगवान्से प्रेम बढ़ाते जाओ। पहले क्या करे? भगवान्मे प्रेम बढ़ाओ। जैसे रामायणका पाठ होता है। अगर मन लगाकर और अर्थको समझकर पाठ किया जाय तो मन बहुत शुद्ध होता है। राग मिटता है। भगवान्की कथा प्रेमसे सुननेसे भीतरका राग स्वत: ही मिटता है और प्रेम जागृत् होता है। उसमे एक बडा विलक्षण रस भरा हुआ है। पाठका साधारण अभ्यास होनेसे तो आदमी उकता सकता है, परन्तु जहाँ रस मिलने लगता है, वहाँ आदमी उकताता नहीं। इसमें एक विलक्षण रस भरा है— प्रेम। आप पाठ करके देखो। उसमे मन लगाओ। भक्तोके चरित्र पढो, उससे बड़ा लाभ होता है, क्योकि वह हृदयमे प्रवेश करता है। जब प्रेम प्रवेश करेगा तो राग मिटेगा, कामना मिटेगी। उनके मिटनेसे निहाल हो जाओगे। यह विचारपूर्वक भी मिटता है, पर विचारसे भी विशोष काम देता है प्रेम। प्रेम कैसे हो?

जो संत, ईश्वर भक्त जीवन मुक्त हो गये।
उनकी कथायें गा सदा मन को शुद्ध करने के लिये।

मनकी शुद्धिकी आवश्यकता बहुत ज्यादा है। मनकी चचलताकी अपेक्षा अशुद्धि मिटानेकी बहुत ज्यादा जरूरत है। मन शुद्ध हो जायगा तो चंचलता मिटना बहुत सुगम हो जायगा। निर्मल होनेपर मनको चाहे कहीं पर लगा दो।

कपट, छल, छिद्र' भगवान्‌को सुहाते नही। परन्तु इनसे आप डरते ही नही। झूठ बोलनेसे, कपट करनेसे, धोखा देनेसे– इनसे तो बाज आते ही नहीं। इनको तो जान-जानकर करते हो। तो मन कैसे लगे? बीमारी तो आप अपनी तरफसे बढ़ा रहे हो। इसमे जितनी आसक्ति है, प्रियता है, वह बहुत खतरनाक है। विचार करके देखो। आसक्ति बहुत गहरी बैठी हुई है। भीतर पदार्थोका महत्व बहुत बैठा हुआ है। यह बडी भारी बाधक है। इसे दूर करनेके लिये सत्सग और सत्‌शास्त्रोंका अध्ययन करना चाहिये जिससे बहुत आश्चर्यजनक लाभ होता है।

मन कैसे स्थिर हो? मनको स्थिर करनेके लिये बहुत सरल युक्ति बताता हूँ। आप मनसे भगवान्‌का नाम ले, और मनसे ही गणना रखे। राम-राम-राम– ऐसे रामका नाम ले। एक राम, दो राम, तीन राम, चार राम, पॉच राम। न तो एक दो तीन बोले, न अंगुलियोंपर रखें,'न मालापर रखे। मनसे ही तो नाम लें, और मनसे ही गणना ़रें। करके देखो। मन लगे बिना यह होगा नही, और होगा तो मन लग ही जायगा।

एकदम सरल युक्ति है– मनसे ही तो नाम लो, मनसे ही गिनती करो और फिर तीसरी बार देखो तो उसको लिखा हुआ देखो। "राम" ऐसा सुनहरा चमकता हुआ नाम लिखा हुआ दीखे। ऐसा करनेसे मन कही जायगा नहीं और जायगा तो यह क्रिया होगी नहीं। इतनी पक्की

बात है। कोई भाई करके देख लो। सुगमतासे मन लग जायगा। कठिनता पडेगी तो यह क्रम छूट जायगा। न नाम ले सकोगे, न गणना कर सकोगे, न देख सकोगे। इसलिये मनकी ऑखोसे देखो, मनके कानोसे सुनो, मनकी जबानसे बोलो। इससे मन स्थिर हो जायगा।

दूसरा उपाय यह है कि जबानसे आप एक नाम लो, और मनसे दूसरा। जैसे मुँहसे नाम जपो—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।।

ऐसा करते रहो। भीतर राम राम राम कहकर मन लगाते रहो। देखो मन लगता है या नही। ऐसा सम्भव है तभी बताता हूँ। कठिन इसलिये है कि मन आपके काबूमे नही है। मन लगाओ, इससे मन लग जायगा।

तीसरा उपाय बतावे। अगर मन लगाना है तो मनसे कीर्त्तन करो। मनसे ही रागनीमे गाओ। मन लग जायगा। जबानसे मत बोलो। कठसे कीर्तन मत करो। मनसे ही कीर्तन करो और मनकी रागनीसे भगवान्‌का नाम जपो।

पहले रागको मिटाना बहुत आवश्यक है और राग मिटता है सेवा करनेसे। उत्पन्न और नष्ट होनेवाली वस्तुओके द्वारा किसी तरहसे सेवा हो जाय, यह भाव रखना चाहिये। पारमार्थिक मार्गमें, अविनाशीमे, भगवान्‌की कथामें अगर राग हो जाय तो प्रेम हो जायगा।

भगवान्‌में, भगवान्‌के नाममें गुणोमे, लीलामे आसक्ति हो जाय तो बड़ा लाभ होता है। अपने स्वार्थ और अभिमानका त्याग करके सेवा करें तो भी राग मिट जाता है।

नारायण! नारायण! नारायण!

।।श्रीहरिः।।

भगवान्‌में मन कैसे लगे

आप जो सम्बन्ध भगवान्‌के साथ मान लें, भगवान् भी वही सम्बन्ध माननेको तैयार है। आपको सरलतासे जैसा भाव आवे, वैसा ही भाव कर लो।

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुञ्ज-हारी।।
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो।
मो समान आरत नहीं, आरतिहर तोसो।।

ऐसे ही तुलसीदासजी आगे कहते हैं—

तोहिं मोहिं नाते अनेक, मानियै जो भावै।
ज्यों-त्यों तुलसी कृपालु! चरन-सरन पावै।।

ऐसे मान लो। भगवान्‌के प्रति भाव बदल लो। भगवान्‌को भगवान् ही मान लो चाहे अपना प्यारा मान लो, जो भाव प्यारा लगे उनके साथ वही भाव मान लो। यहाँ कई वर्षो पहले व्याख्यान करते हुए मेरेसे एक भाईने प्रश्न किया:— मुझे तो मांका नाम प्यारा लगता है। प्रत्येकका ही ऐसा भाव होता है कि माँ अच्छी लगती है।

पालन करने वाली होती है माँ। बूढ़े हो जायँ तब तक माँ याद आती है। माँका स्नेह होता है। स्नेहका प्रभाव ज्यादा हो जाता है। तो, मेरेसे पूछा था एक सज्जनने कि भगवान्को हम माँ कह कर पुकार सकते हैं क्या?

भगवान्में स्त्री-पुरुषका बिल्कुल भेद है ही नहीं। माँ कहोगे तो माँ रूपमें आ जायेंगे भगवान्। प्रबोध-सुधाकर पुस्तकमें श्री शंकराचार्यजी महाराज– (वेदान्तके आचार्य–) ने, 'मातः कृष्णाऽभिधाना' लिखा है। वे भी कृष्ण भगवान्को माँ कह कर पुकारते हैं। माँ कहकर पुकारो। माँ नामसे यदि स्नेह जागृत होता हो, मन लगता हो तो भगवान्को मां कहो। पिता कहो। भाई कहो। जो नाम प्यारा लगे, जो सम्बन्ध प्यारा लगे। ऐसा नहीं मान सको तो राधाजीको माँ बना लो, नहीं तो कृष्ण माँ है मेरी। ऐसा मान लो।

पहले आरम्भ-आरम्भमें ही सम्बन्ध जोड़नेमे मन जगह-जगह जाता है। उद्देश्य एक बना लें। लक्ष्य एक बना लें। बस, फिर बादमें जगह-जगह मन नहीं जायगा, फिर एकमें ही मन रहेगा। जैसे लड़का हो या लड़की। आप उसका सम्बन्ध करते हो, लड़केका सम्बन्ध करते हो तो अनेक लड़कियोंकी बातें करो तो छोरा सुनेगा। लड़कीका सम्बन्ध आप करते हो, अपनी स्त्रीसे बातें करते हो कि देखो वहाँ ऐसा लड़का है, इतना पढा-लिखा है। इस प्रकारकी बातें करोगे– तो लड़की सुनेगी। ऐसी बातें लड़की कब तक सुनती है? जब तक उसका सम्बन्ध

पक्का नहीं हो जाता। आप सम्बन्ध पक्का कर दें, अमुकके साथ बात पक्की हुई। उसके बाद (सम्बन्ध पक्का होनेकेबाद) छोरी केवल उसकी बात सुनेगी। दूसरेकी बात इस प्रकारसे नही सुनेगी। सुनेगी तो परवाह नही करेगी। ऐसे ही लडकेका यदि किसीके साथ सम्बन्ध पक्का हो गया तो लडका सम्बन्धवाली उस लड़कीकी ही बात सुनेगा कि कैसी योग्यता है? कैसी बात है। लड़की भी छिप-छिप कर सुनती है। यह क्या है? सम्बन्ध हो गया न अब। सम्बन्ध न होता, तो इस प्रकार नहीं सुनती। बहुत-सी बातें होती है, पर नही सुनते। तो हम भगवान्‌की बाते क्यों नहीं सुनते है, क्योंकि सम्बन्ध जोड़ा नहीं। जब सम्बन्ध भगवान्‌के साथ जोड लेंगे तो उनकी बाते ही सुनेंगे। बाद मे तरह-तरहकी बातें कौन सुनेगा? बताओ! सुने तो असर नहीं होगा। उसी रीतिसे दूसरी बातें नही सुनते जिस रीतिसे लड़की दूसरे लडकोंकी बातें नही सुनती। केवल सम्बन्ध वाले लड़के की बात सुनती है। देखा नहीं, पहले सुना नही। बस मा-बापने सम्बन्ध कर दिया कि हमने अमुकको लड़की दी। इसी प्रकार भगवान्‌से सम्बन्ध जोड़ लेना है। हमें तो भगवत्प्राप्ति करना है फिर भगवान्‌की बात अच्छी लगेगी। स्वतः ही, स्वाभाविक ही। फिर मन और कहीं क्यो जायगा? कहाँ जायगा? हमें मतलब ही नहीं है दूसरे से भाई।

हमें क्या काम दुनिया से हमें श्रीकृष्ण प्यारे हैं।
यशोदा नन्दके नन्दन मेरे आंखोंके तारे हैं।।

हमें क्या मतलब? दुनियासे क्या लेना-देना। न लेना है, न देना है। हमारे तो एक भगवान् हैं और वे ही हमारे हैं।

भगवान्के गुण सुनें, उनके चरित्र सुनें, उनकी महिमा सुनें। उनके परायण होवें। सुननेसे बड़ा लाभ होता है। भक्तोंके चरित्रोंसे बड़ा लाभ होता है। वह भी एक बढिया उपाय है। दिनमें घन्टा, दो घन्टा आप कहीं एकांतमें बैठ जाओ, कमरेमें बैठ जाओ। दरवाजा कर लो वन्द। भक्तोंके चरित्र पढ़ो। जिनको पढ़ते-पढ़ते जब गद्गद् हो जाय और प्रियता आवे। उस समय पुस्तकको छोड़ दो। नाम-जप है, कीर्तन है, शुरू कर दो। भगवान्का चिन्तन-भजन शुरू कर दो। जब मन फिर इधर-उधर जावे और वैसी बात न रहे, तो फिर एक पन्ना पीछेसे पढ़ो। फिर पढ़ते-पढ़ते भाव आ जावे फिर छोड दो वहाँ। पुस्तक पढ़ना या पूरा करना है, यह मतलब नहीं। मन लगाना है। बस, वहाँ लगा दिया। उसके बाद फिर नाम-जप करते रहो। कीर्तन करते रहो। प्रार्थना करते रहो। भगवान्से बाते करते रहो मनमें। हमारा मन नही लगता महाराज! मैं क्या करूं? आप कब दर्शन दोगे? आपके चरणोंमें कब प्रेम होगा? ऐसे एक पुस्तक निकली है गीता-प्रेससे ''ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप'' उस पुस्तकके अनुसार करो, बड़ा लाभ होगा। चलते-फिरते

भगवान्से बात करना शुरू कर दो। मनसे प्रश्न पूछो तो मनसे उत्तर मिले। जो स्फुर्णा हो जाय फिर भगवान्से पूछो– सुगमतासे मन लग जायगा। इसी प्रकार विनय-पत्रिका ले ली अथवा कोई स्तुति ले ली। स्तुति करते-करते, मन लग जाय तब चिन्तन करना, नाम-जप करना शुरू कर दो। जब छूट जाय तो फिर पढना शुरू कर दो। इन बातोमेसे कोई बात अपना कर आप देखें। ऐसे तो यह युक्ति-सगत जॅचती है। बात यह ठीक है। ऐसे हो सकता है कि नही? यदि सम्भव है तो करके देखो। करके देखनेसे पता लगता है कि कहॉ-कहॉ विघ्न आते हैं? कहां बाधा आती हैं? क्यों बाधा आती है? इन बातोंका पता लगेगा।

यदि मन अधिक चचल हो तो जप करते रहे, थोड़ी-थोड़ी देर बाद भगवान्से कहता रहे कि आपके चरणोमे मन नहीं लगता। हे भगवन्! मन नहीं लगता है। नमस्कार करे और कहता रहे। यह बड़ी सरल बात है। नाम-जप करता रहे, आधा मिनट हुआ, एक मिनट हुआ फिर कह दिया महाराज! मन नही लगता। कहना–प्रार्थना हो गई। भगवान्की याद आ गई। नाम जप हो रहा है। पांच-सात दफे मालामे कह देवें। महाराज, मन नही लगता। हे नाथ! मै भूल जाता हूॅ। हे नाथ! मन नही लगता। नमस्कार करते रहो, कहते रहो। षोडश-मन्त्र ब्रह्माजीका बताया हुआ है; यह जपता रहे और प्रार्थना करता रहे। हे नाथ! मन नहीं लगता। हे

भगवान् क्या करूं? महाराज! आपके चरणोंमें मन नहीं लगता। कहते रहो। उनकी कृपासे मन लगने लगेगा।

राम! राम! राम!

।।श्रीहरि:।।

निरन्तर भगवत्स्मृति कैसे हो?

श्रीमद्भगवद्गीतामे भगवान्‌ने कहा है—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्ध च।

(गीता ८/७)

इसलिये सब समय तू निरन्तर मेरा ही स्मरण कर और युद्ध (कर्त्तव्य कर्म) भी कर। भगवान्‌का स्मरण सब समय हो सकता है, किन्तु युद्ध सब समय नहीं हो सकता, अर्जुनके सम्मुख युद्धरूपी कर्त्तव्य ही था। अन्य लोगोके सामने अपने-अपने घरों के काम है। युद्धकी तरह घरोंके काम-धन्धे भी सभी समय नहीं हो सकते। इस प्रकार भगवान्‌का स्मरण करते हुए काम करना, काम करते हुए भगवान्‌का स्मरण करना एवम् भगवान्‌का ही काम करना। ये तीन विकल्पमें भगवत्स्मरण ही प्रमुख है कार्य गौण है। दूसरे विकल्पमें कार्य ही प्रमुख है और भगवत्स्मरण गौण है। और तीसरे विकल्प में भगवान्‌के प्रति अनन्य भाव है।

प्राय: लोग काम करते हुए भगवान्‌को भूल जाते हैं। इसमें स्वयंकी असावधानी तो खास कारण है ही, परन्तु

साथमें एक भारी भूल भी है। यह एक सिद्धान्त है कि जिसके प्रति ममता होती है, उसका स्वतः ही स्मरण होता है। लोग काम-धन्धोंको अपना मानते हैं, उनके प्रति ममता रखते हैं, अतः काम-धन्धे ही याद आते हैं, भगवान् नहीं। भगवान् याद आते भी हैं, तो कुछ समयके बाद उन्हें फिर भूल जाते हैं। अतः यह दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिये कि हमें घरका काम करना ही नहीं है। काम तो भगवान्‌का ही करना है। "**अंजन कहा आँख जेहिं फूटे**" जिस अंजन से ऑख फूट जाय, वह अंजन कैसा? उससे हमें क्या मतलब? घरका काम करते हुए भगवान्‌को भूल जाय तो ऐसे काम से क्या लेना? अतः साधकको यह मान लेना चाहिये कि घर हमारा नहीं, काम हमारा नहीं और हम भी हमारे नहीं। घर भी भगवान्‌का, काम भी भगवान्‌का और हम भी भगवान्‌के हैं। भगवान्‌की शक्तिसे ही भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये हम भगवान्‌का ही काम कर रहे हैं— इस प्रकार दृढ़ भावनासे भगवान्‌के प्रति ममत्व पैदा हो जाएगा और फिर भगवान्‌का स्मरण स्वतः ही होने लगेगा। स्मरणके लिये प्रयासकी कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। किन्तु जबतक घर आदिको अपना मानते रहेंगे, तब तक स्मरणमे भूल होगी ही। जैसे हम किसी धर्मशालामें ठहरते हैं तो यह बात जॅच जाती है कि यह धर्मशाला हमारी नहीं है। इसी प्रकार घरमें रहते हुए यह बात जॅच जानी चाहिए कि यह घर हमारा नहीं है, यहाँ तो थोडे समयके लिये हम रहने आये

है। इस बातको बहुत ही दृढ़तापूर्वक पकड़ लेना चाहिये कि यह घर मेरा नहीं, धनादि पदार्थ मेरे नहीं, परिवार मेरा नहीं, शरीर मेरा नहीं। ये तो थोड़े समयके लिये मिले हुए हैं। समय पूरा होते ही इनसे वियोग हो जायगा। यदि ये मेरे होते तो सदा मेरे साथ रहते; किन्तु इनपर न तो कोई अधिकार ही चलता है, न इनमें हम इच्छानुसार परिवर्तन ही कर सकते हैं और न इनको मरने, नष्ट होनेसे बचा ही सकते हैं। तो ये पदार्थ आदि मेरे कैसे हो गये? किसी भी युक्तिसे इनके साथ "मेरापन" सिद्ध नहीं होता। अतः ये मेरे नहीं हैं, नहीं हैं, नहीं हैं।

मेरे तो एकमात्र भगवान् ही हैं; क्योंकि भगवान् पहले भी मेरे थे, अब भी हैं और आगे भी रहेंगे। सांसारिक पदार्थ पहले भी मेरे नहीं थे, आगे रहेंगे नहीं और वर्तमानमें भी इनसे निरन्तर ही वियोग हो रहा है। संसारके साथ कभी संयोग है ही नहीं और भगवान्के साथ कभी वियोग है ही नही।

भगवत्प्राप्तिकी इच्छा कभी भी मिटती नही। मनुष्य चाहे इस बात को माने या न माने; किन्तु उसके हृदय में यह कामना अवश्य रहती है कि मै सदाके लिए पूर्ण सुखी हो जाऊ। सभी बन्धनोसे मुक्त हो जाऊ, मेरे पास कभी दुःख न आये। यही भगवत्प्राप्तिकी इच्छा है। यह इच्छा अवश्यमेव पूरी होती है, क्योकि यह वास्तविक एवं सच्ची इच्छा है।

ससारकी इच्छा बिल्कुल नकली है। यह इच्छा बनती

और मिटती रहती है, किन्तु कभी पूरी नहीं होती। लोगोंने मिथ्या धारणा कर रखी है कि संसारकी इच्छा मिटती नहीं परन्तु वास्तविक बात यह है कि यह इच्छा टिकती नहीं, बदलती रहती है। बचपनमें कोई और इच्छा थी, जवानीमें कोई और हो जाती है एवं वृद्धावस्थामें तो इच्छा का रूप ही बदल जाता है। संसार स्वयं परिवर्तनशील है। अतः संसारकी इच्छा भी परिवर्तनशील ही है। शरीर भी परिवर्तनशील ही है। अतः संसारकी इच्छा शरीरकी ही इच्छा है, व्यक्तिकी स्वयंकी इच्छा नहीं है। स्वयं (जीव) अपरिवर्तनशील है, परमात्मा भी अपरिवर्तनशील है एवं परमात्माकी इच्छा भी अपरिवर्तनशील है। इसलिये परमात्म-प्राप्तिकी इच्छा ही स्वयंकी इच्छा है। सांसारिक पदार्थ शरीरको ही प्राप्त हो सकते हैं स्वयंको नहीं। स्वयंको तो परमात्मा ही प्राप्त हो सकते हैं; क्योंकि संसार, सांसारिक पदार्थ एवं शरीरकी जातीय एकता है। इसी प्रकार परमात्मा एव स्वयं (जीव) की जातीय एकता है, सम्बन्ध सजातीयका ही होता है, विजातीयका नही। संसारके अशको संसारकी इच्छा है एवं परमात्माके अंशको परमात्माकी इच्छा है।

संसारका काम, घर-परिवारका काम भी, शरीर, मन, इन्द्रियाँ आदिका ही काम है, हमारा काम नहीं है। हमारा काम तो भगवान्‌का भजन करना एवं भगवान् और उनके तत्त्वको प्राप्त करनेका ही है। हमें एकमात्र

भगवान्‌की ही। आवश्यकता है एवं भगवत्प्राप्तिकी इच्छा ही हमारी वास्तविक इच्छा है। संसारका काम तो पराया काम है।

उपर्युक्त विवेचनसे यह सिद्ध हुआ कि जीवका परमात्माके साथ ही स्वतः सिद्ध नित्य सम्बन्ध है। परन्तु अज्ञानवश संसारको एवं संसारके कामको अपना मान लेनेके कारण ही जीव कार्य करते समय भगवान्‌को भूल जाता है। जीव यदि दृढ़तापूर्वक भगवान्‌के साथ अपने नित्य, सत्य शाश्वत सम्बन्धको स्वीकार कर केवल उन्हें अपना मान ले एवं भगवत्प्राप्तिके अतिरिक्त किसी भी कार्यको अपना कार्य न मानें तो वह भगवान्‌को कभी भूल ही नहीं सकता। संसारकी इच्छा करने एवं संसारके साथ सम्बन्ध माननेके कारण ही भगवत्प्राप्तिमें भूल होती है। अतः अपने वास्तविक सम्बन्ध एवं कार्यको पहिचानना चाहिए।

प्रश्न— निरन्तर भगवत्स्मरणके लिए नाम जपकी आवश्यकता है क्या?

उत्तर— कलियुगमें नाम सर्वोपरि साधन है। नाम जपसे सब काम स्वतः ही ठीक बन जाते है। "**नामु रामको कलपतरू कलि कल्यान निवासु।।**" (मानस १/२६) रामजीका नाम रूपी कल्पतरु कलियुगमें बहुत कल्याण करता है। कल्पतरुसे जो चाहे सो ले लो। निरन्तर नाम जप करनेसे इसमें रस आने लगता है। मिठाई खानेवाला ही रसको

जानता है। ऐसे ही नामको लेने वाला ही नामके रसको जान सकता है।

नाम जपसे अत्यधिक लाभ होता है। नाम जपसे विषय-वासना दूर होती है: पाप नष्ट होते हैं; विकार दूर होते हैं; शान्ति मिलती है, और भक्ति बढती है। नाम जपसे असम्भव भी सम्भव हो सकता है। जब मनमें चिन्ता आवे तो आधा घंटा, एक घटा नाम जपो, चिन्ता मिट जायगी। नाम जप करनेवाले सज्जन नाममय हो जाते है।

नाम जप तो असली धन है जो साथ जाता है। इसलिये कहा है— "**धनवन्ता सोई जानिये जाके राम नाम धन होय।**" नामकी कीमत कोई आँक नहीं सकता। यह अमूल्य रत्न है। "**पायो री मैंने राम रतन धन पायो।**" नामको सगुण और निर्गुणसे भी बडा बताया है।।

कहौं कहौं लगि नाम बड़ाई।
राम न सकहिं नाम गुन गाई।।

(मानस १/२५/४)

नामके गुण तो स्वयं भगवान् भी गाना चाहें तो नहीं गा सकते। नामकी महिमा अपार है, असीम है और अनन्त है।

प्रश्न— नाम जपकी खास विधि क्या है?

उत्तर— भगवान्‌के स्वरूपका ध्यान करते हुए, अर्थको समझते हुए, भगवान्‌के होकर नामका जप करें।

नाम जप गुप्तरूपसे और निष्काम भावसे करे। नाम जप निरन्तर करते रहे। नामको भूल न जाये, इसके लिए एक उपाय है। मन ही मन भगवान्‌को प्रणाम करके उनसे प्रार्थना करें कि हे नाथ! मैं आपको भूलूॅं नही, हे प्रभो! आपको मैं भूलूॅं नहीं। ऐसा थोड़ी-थोडी देरमे कहते रहें।

एक बात और है, उस पर ध्यान दे। जब कभी आपको भगवान् अचानक याद आ जायॅं, या भगवान्‌का नाम अचानक याद आ जाय उस समय समझो कि भगवान् मेरेको याद करते हैं। ऐसा समझकर प्रसन्न हो जाओ कि मैं निहाल हो गया; मेरेको भगवान्‌ने याद कर लिया। अब और काम पीछे करेंगे– उस समय नाम जप व कीर्तनमें लग जाओ। ऐसा करनेसे भक्ति बहुत ज्यादा बढ़ती है।

मालासे जप करना लाभदायक है। भगवान्‌को याद करनेके लिये माला एक शस्त्र है। माला फेरनी चाहिये। जितना नियम है उतना जप मालासे पूरा हो जाता है। उसमें कमी न आ जाय इसलिये मालाकी आवश्यकता है। बिना मालाके अगर निरन्तर जप होता है तो मालाकी कोई जरूरत नहीं है।

नारायण! नारायण! नारायण!

।।श्रीहरिः।।

जीवनकी चेतावनी

गीताजीमें दो बातें भगवान्‌ने अपनी ओरसे विशेषतासे कही हैं—

१. साधनके विषयमें। २. अन्तकालके विषयमें। मनुष्यका जीवन भगवन्मय होना चाहिए, भगवान्‌की साधनामें लगना चाहिए और अन्तमें भगवान्‌की स्मृति होनी चाहिए। इन दो विषयोंमें भगवान्‌ने जितने श्लोक कहे हैं और जितना विवेचन किया है उतना और किसी विषयमें नहीं किया। अन्तमें कहते हैं— 'मामेकं शरणं व्रज' तू मेरी शरण हो जा, मैं सम्पूर्ण पापोंसे मुक्ति कर दूँगा, तू चिन्ता मत कर।

अब सज्जनो ध्यान दें। यह संसार जो अपना दीखता है यह अपने साथ नहीं रहेगा, नहीं रहेगा।

थे बड़े-बड़े महाराजे,
जिनके बजे रात दिन बाजे।
वे भी बने कालके खाजे।।
मिले नहीं बारम्बार शरीर,
उमर क्यों गफलतमें खोते हो?

संसारसे क्या ले लोगे आप? धन ले लोगे, सुख ले लोगे? ले कुछ सकोगे नहीं। धोखा होगा, धोखा! संसारसे किसी एकको भी पूर्ण सुख मिला है क्या? मिलेगा भी नहीं, क्योंकि ये तो नाशवान् है और भगवान् हैं अविनाशी। ये शरीर, संसार सभी यहीं रहनेवाले हैं। शरीरको भी दूसरे लोग उठायेंगे। यह पहलेसे विचार करना होगा, सोचना होगा कि क्या करना चाहिए। जैसे मनुष्य घरसे निकल जाता है और पता ही नहीं कि कहाँ जाना है तो क्या दशा होती है? पूछे किसीसे कि मार्ग बतादो, तो बताने वाला पूछे कि कहाँका? तो कहे कि कहींका बता दो। तो वह पागल समझा जायगा। एक लक्ष्य तो होना चाहिए।

भाइयों ध्यान देना। हमारी जीवन-यात्रा तो हमारे जन्मके समयसे ही चल पड़ी। जीवन प्रतिक्षण खत्म हो रहा है और हमें इस जीवनमें क्या करना है, अभी तक यह पता ही नहीं है। हममें से बहुतसे बहिन-भाइयोंको तो पता ही नहीं कि हमें किधर जाना है, हमारे जीवनका क्या लक्ष्य है। मैंने पूछकर देखा है कि बताओ आप क्या चाहते है? तो कोई निर्णय नहीं है। कभी कुछ चाहते हैं। यहाँकी सब चीजें तो छूटनेवाली हैं, इसलिये प्रभुको याद करो जो नित्य निरन्तर रहनेवाले हैं।

सज्जनो! चेतो। दूसरोंको धोखा देकर हम कुछ ले भी लेंगे तो महान् मुश्किल होगी, कुछ नहीं मिलेगा। सब कुछ यहीं रहेगा और यमराजके दूत आ जायेंगे। वह दिन कभी भी आ सकता है; पता नहीं कब आ जाय, उसके

आनेमें कोई सन्देह नहीं है। आप हम सब कहाँ बैठे हैं, पता है? मृत्युलोकमें हैं, मरनेवालों के लोकमें है, यहाँ रहनेवाला कोई नहीं, सब मरने ही मरनेवाले हैं। निश्चिन्त कैसे बैठे हो? जो काम करना है सो कर लो। अब नहीं किया तो फिर कब करोगे? छोटे-छोटे बालक होते हैं, वे भी यह सोचते हैं कि बड़े होकर यह करेंगे। इसी प्रकार हम सोचते हैं कि बड़े होकर यह करेंगे। बाल सफेद होने लगे तो कब करोगे? अब तो मरोगे, बस। शरीर प्रतिक्षण जा रहा है, इसमें सन्देह नहीं है किंचिन्मात्र भी। जन्म-दिनपर खुशी मनाते हैं, अरे रोनेका दिन है एक वर्ष बीत गया, परन्तु इसमें किया क्या? जिसमें भगवान्‌की प्राप्ति हो सकती थी, बारह महीनेकी उस उम्रको व्यर्थ गवां दिया। विचार करनेकी बात है। आगेके लिये सावधान होनेकी बात है कि अब जो समय बीत गया, वह तो बीत गया, अब नहीं बीतने देंगे।

"अंतहु तोहि तजेंगे पामर, तू न तजै अब ही ते"।

ये सब तो छूटनेवाले हैं, काम पड़ने पर परमात्मा ही साथ रहनेवाले हैं। प्रभु ही हमारे हैं सज्जनो! और कोई हमारा नहीं है। अतः हे नाथ, हे नाथ! पुकारो। वे प्रभु सब समयमें हैं, तो अभी भी हैं, सब जगह पर हैं तो यहाँ भी हैं और सबके हैं तो हमारे भी हैं, सबमें हैं तो हमारेमें भी हैं, वे स्वयं कहते हैं— "सुहृदं सर्वभूतानां" प्राणीमात्रके सुहृद्— ऐसे परमात्माके रहते हुए हमारी दुर्दशा हो तो फिर क्या

कहें? उनके रहते हुए हम दुःख पावें, कष्ट उठावे। तो इसमें कारण क्या है? उनसे विमुख हो गये और नाशवान् पदार्थोंके पीछे पड़े है कि वे मिल जायँ, भोग भोग लें, मान, सम्मान मिल जाय, मिलेगा कुछ नहीं, धोखा होगा धोखा। सब ज्यो-का-त्यों रह जायगा, साथ कुछ नहीं जावेगा। अतः उपकार करो। साथ क्या चलेगा? साथ चलेगा— स्वभाव। सेवा करनेवाला सब जगह सेवा करेगा और महान् आनन्द लूट लेगा। असली पूंजी आपकी है, आपका स्वभाव।

एक दिनके लिए भी कहीं जाते हैं तो सोचते हैं कि अमुक जगह ठहरना होगा, अमुक सवारी मिलेगी। परन्तु इस संसारको एक दिन छोड़ना है, इसे छोड़ कर जरूर जाना पड़ेगा, तो इसका प्रबन्ध किया है कि नहीं; यह प्रत्येक भाई बहिनको स्वयंको सोचना होगा। एक क्षणका भी पता नहीं, हार्टफेल हो जाता है, चलते फिरते मर जाता है। फिर हम क्या फौलादके बने हुए हैं। इसलिये स्वभावको शुद्ध बनाओ। हर एकका उपकार करो, हित करो। प्रभुको याद करो। जितने सन्त महात्मा हुए हैं वे सब भगवान्‌को याद करनेसे ही संत महात्मा बने हैं। भगवान्‌के नाम बिना सब खाली हैं, खाली। अतः उठते-बैठते, सोते-जागते, काम-धन्धा करते हुए भी और न करते हुए भी भगवान्‌को पुकारते रहो। उनसे काम पड़नेवाला है, उनको याद करते रहो। सब समय नाम-जप करते रहो और कहते रहो— राम! राम! राम!

नाम जप करो। अन्तमें नाम काम आवेगा। धन, सम्पत्ति, परिवार, मकान कुछ काम नहीं आवेंगे। अभी तक जिन कामों को करते हुए, आपको सत्संग, भजन, ध्यान, स्वाध्याय, पाठ, जप आदिके लिए समय नहीं मिलता है अन्तमें क्या होगा? हाय! हमने कुछ नही किया। यह सारा काम-धन्धा कुछ नहीं कियामें भर्ती होने वाला है। मनुष्य कहता है कि सत्संगके लिये समय नहीं मिलता। राम! राम! कितनी भारी भूल! बच्चा जन्मता है, तो बड़ा होगा कि नहीं होगा, इसमें सन्देह है। पढ़ेगा कि नहीं पढ़ेगा, इसमें सन्देह है। विवाह होगा कि नहीं होगा, इसमें सन्देह है; परन्तु मरेगा कि नहीं मरेगा, इसमें सन्देह नहीं है। मरना तो पड़ेगा ही। परन्तु जिन कामोंमें सन्देह है उन्हें तो तत्परतासे कर रहा है, परन्तु जिस काममें सन्देह नहीं, जाना तो पड़ेगा जरूर, उसके लिये कोई तैयारी ही नहीं। बड़े आश्चर्यकी बात है। यह बड़ी भारी भूल है। अतः सावधान हो जाओ।

मैं एक सच्ची बात कहता हूँ। वह यह है कि सिवाय भगवान्‌के अपना कोई नहीं है। मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, श्वास आदि कोई आपके नहीं। परन्तु प्रभुको आप अपना मान लें तो प्रभु छोड़ नहीं सकते आपको। ये सब चीजें, जिनके पीछे आप पड़े हैं, आपकी बात कोई माननेवाले नहीं हैं। जिस शरीरकी आप सदा रक्षा करते हो, एकदिन रात्रिमें भूलसे कपड़ा अलग रह जाय तो जाड़ा लग जाता है। यह ख्याल नहीं करता कि कितने दिन इसने रक्षा की.

एक दिन मैं भी क्षमा कर दूँ, इतने वर्षोंसे अन्न जल दिया। दो दिन अन्न जल बन्द कर दो तो इसकी क्या दशा होती-है? यह इतना कृतघ्न है कि दो दिनमें ही पोल निकाल देता है। तो ऐसे कृतघ्न शरीरके तो बन गये गुलाम और जो भगवान् याद करने मात्रसे दौड़ते हैं उन भगवान्‌को याद ही नहीं करते। बिना याद किये भी उन भगवान्‌ने हमें विद्या, बुद्धि, ज्ञान, शरीर, जीवन आदि सभी दिये हैं और देते ही रहते हैं। इतने विलक्षण ढंगसे देते हैं कि उनका दिया हुआ अपना ही मालूम देता है। ऐसे परम सुहृद् परमात्माको भूल गये।

"सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति"।

(गीता ५/२९)

परमात्मा पापी, दुराचारी, सज्जन आदि सभीके परम सुहृद् हैं। अतः उनको तो याद करो और संसारका काम करो। संसारके कामसे भी भगवान्‌को राजी करो। स्वार्थका त्याग करके सेवा करो। सब भाई-बन्धुओंकी, स्त्री-पुत्रकी, सबकी सेवा करो, सबको सुख पहुँचाओ, ये सोचकर कि ये सब भगवान्‌के हैं। इससे भगवान् बड़े राजी होंगे कि यह मेरे बच्चोंका पालन करनेवाला है। जैसे कोई एक बच्चा है जिसके माता-पिता नही, उसे एक माई अपने घर ले जाती है और उसका पालन-पोषण करती है, तो लोग कहते हैं कि बडी दयालु माई है। अपने बच्चोका पालन तो सभी करते है, कुतिया भी अपने

बच्चोंका पालन करती है। अतः सबका हित करना है। चाहे तो जिनसे अपना कोई स्वार्थ न हो उनका हित कर दो या जिनकी आप सेवा करते हैं, उनसे अपना कोई सम्बन्ध न रखो। एक ही बात होगी। अतः स्वार्थ त्याग कर सबको सुख पहुँचाओ, सबका हित करो–

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

किसीको दुःख न मिले, सबको आराम मिले, सबको सुख मिले। सज्जनो! ऐसा भाव कर लो। यह मनुष्य जन्मका खास मौका है। स्वार्थके लिए काम करना मनुष्यता नहीं है। कुत्ते आपसमें खूब खेलते हैं परन्तु रोटीका टुकड़ा देखते ही लड़ाई हो जाती है। ऐसे ही यदि स्वार्थके लिए हम लोग भी लड़ें तो उनमें और हममे क्या अन्तर हुआ? इसलिये यह भाव रखो कि सबका हित कैसे हो? **'ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्व भूतहिते रताः'** (गीता १२/४)। सबके हितमें जो रत होते हैं वे परमात्माको प्राप्त होते हैं। अतः सज्जनो संसारको अपना मानकर जो लाभ आपने उठाया है, वह तो उठा ही लिया, अब भगवान्‌को अपना मानकर देख लो। सबका हित हो, सबको आराम मिले, सबका कल्याण हो यह भाव रखो। सेवा जितनी कर सको, उतनी करो। परन्तु भावमें कमी न रखो। भीतरका भाव यह होना चाहिए कि सबके हितमें प्रीति हो, उस भावसे स्वतः त्याग होगा। भावना पहले होती है, क्रिया

बादमें होती है। अतः सबके हितकी भावना हो। जो भी बड़े-बड़े महात्मा हो गये, उनमें दूसरोंके हितकी भावना थी।

उमा संत कइ इहइ बड़ाई।
मंद करत जो करइ भलाई।।

(मानस ५/४०/४)

उनके साथ कोई मन्द करे तो भी वे उसकी भलाई ही करते रहते है। ऐसे ही सबका भला हो जाय, सबका कल्याण हो जाय, ऐसा चिन्तन आपके मनमें होने लग जाय, तो आपका उद्धार हो जायगा। महापुरुषोके संगसे, दर्शनसे कल्याण हो जाता है। इसका कारण क्या है? कारण है कि एकान्तमें रहते हुए भी उन महापुरुषोको चिन्ता रहती है कि सबका कल्याण कैसे हो जाय। उस लगनके कारण उनके दर्शन मात्रसे ससारका हित होता है। उनकी हवा मात्रसे सबका कल्याण होता है।

एक मार्मिक बात है कि जैसे परमात्मा सबका हित चाहते हैं उसी प्रकार जो व्यक्ति सबका हित चाहता है उसकी परमात्माकी शक्तिके साथ एकता हो जाती है और उसके द्वारा सबका हित होता है।

अतः सज्जनो! भाइयो! बहिनो! सच्चे हृदयसे सबका हित कैसे हो, सबका कल्याण कैसे हो, यह लगन लग जाय माता-बहने घरोंमें स्वयं काम करें और सेवा करें, दूसरोसे नहीं करायें। यह शरीर थोडे दिनोंके लिये मिला है, फिर

समाप्त होनेवाला है। अतः थोड़े दिन डटकर सेवा कर लो। लाभ उठा लो। फिर यदि शरीर बीमार हो जायेगा तो इसे उठाने-बैठानेके लिए भी दूसरे आदमीकी जरूरत पड़ेगी। जी गये तो यह दशा हो सकती है और नही तो खत्म हो जाओगे। यह सेवा असली चीज है, यह भगवान्‌को भी खरीदने वाली है। इसलिए सेवा करो, चीज-वस्तु तो दूसरोंको दो और काम धन्धा अपने आप करो। देखो आपसमें प्रेम होता है कि नहीं। परिवारमें झगड़ा क्यों होता है? इसलिए कि हम कहते हैं कि काम-धन्धा तो तू कर और चीज मैं लूं। इससे लडाई होगी।

आपसमें प्रेम बढ़ानेका दूसरा उपाय है कि बड़ोंके चरणोंमें प्रणाम करे। इससे आवागमन मिट जाता है। बड़ोंके चरणोंमें नमस्कार करो। उनकी आज्ञाका पालन करो। उनकी सेवा करो। उनको कितनी प्रसन्नता होगी। जिससे आपसमें प्रेम बढ़ेगा, स्नेह बढ़ेगा, घरमें आनन्द रहेगा। धर्म, सन्त, महात्मा, परिवार भगवान् सभी राजी हो जायेंगे। परन्तु यदि कोई गड़बड़ी करता है, खोटे [illegible] चलता है तो उससे माता-पिता भी नाराज हो जायेंगे। अतः सेवा, उपकार करो और भगवान्‌को याद रखो। यह संसार सदा रहने का नहीं है, यहाँ सदा रहनेके लिए नहीं आये हैं, थोड़े दिन रहना है। जैसे कुछ दिनोंके लिए गीता भवनमें सत्संगमें आये हैं, फिर यहाँसे चल देंगे, इसी प्रकार इस संसारसे चल देना है अचानक, और

पता है नहीं कब चल देना है?

तुलसी सोइ नर चतुर है जो राम भजन लवलीन।
पर धन पर मन हरन को वेश्या भी परवीन।।

भगवान्‌के भजनमें जो लग गया है वही समझदार है। भगवान्‌के दरबारमे भी उसका आदर है कि उसने मनुष्य जन्म सफल कर लिया। भगवान्‌ने कृपा करके मनुष्य जन्म दिया कि जिससे यह अपना कल्याण कर ले। परन्तु यदि मनुष्य अपना कल्याण नहीं करते तो वे भगवान्‌को एक प्रकार से धोखा देते हैं। इसलिये ऐसा न हो जाय। हमे मनुष्य शरीर मिला, उत्तम कुल मिला, भगवान्‌की ओर चलनेकी रुचि मिली, सत्सग मिला, गीता, रामायण जैसे ग्रन्थ और भगवान्‌का नाम सुननेको मिला। अब क्या बाकी रहा? थोड़ा-सा उद्योग अपनी तरफसे करो। हॉ में हॉ मिलाओ। इतनेमें कल्याण होता है। भगवान्‌की कृपा मान कर नामका जाप करो, सेवा करो और रात-दिन मस्त रहो कि हम तो अन्याय करते ही नहीं, किसीको दुःख देते ही नहीं, किसीको कष्ट पहुँचाते ही नहीं, तो फिर हमें दुःख किस बातका, चिन्ता किस बातकी!

तन कर मन कर वचन कर देत न काहू दुःख।
तुलसी पातक झड़त है देखत उसके मुख।।

आप ऐसी कृपा करो कि अबसे किसीको दुःख नहीं देंगे। मनसे किसीका बुरा चिन्तन नहीं करेंगे। जिह्वासे

ऐसी वाणी नहीं बोलेंगे जिससे किसीको कष्ट पहुंचे। कोई क्रिया ऐसी न करें जिससे किसीको कष्ट पहुंचे। सबको आराम पहुंचाएं, सेवा करें। ऐसे सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें आप लगे रहो, भगवान्‌की अनन्त शक्ति, अपार शक्ति आपके साथ है। ऐसा करते ही मनुष्य जीवन सफल हो जायगा। कलियुगकी बड़ी महिमा गाई है, क्योंकि इसमें बहुत जल्दी कल्याण होता है।

कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास।।

(मानस ७/१०३)

बिना प्रयासके ही इस संसार-सागरसे तर जाता है। ऐसा सुन्दर मौका हमें मिला है। अतः हम भगवान्‌के चरणोंमें लग जायँ। अपने भगवान् हैं, भगवान्‌के अलावा कोई हमारा नहीं, हम किसीके नहीं हैं। संसारमें आये हैं तो केवल सेवा करनेके लिए आये हैं। संसारसे क्या मिलेगा? सब सोचते हैं कि मैं अपना स्वार्थ सिद्ध कर लूं, तो इससे स्वार्थ सिद्ध होगा नहीं। दूसरोंकी सेवा करो। और जो प्रभु अपने हैं, उनको याद रखो। यह जीवन सेवा करनेके लिए मिला है। अतः न्याययुक्त, शास्त्रकी पद्धतिके अनुसार सबकी सेवा करो।

उद्योग पर्वमें एक कथा आती है धृतराष्ट्र विदुरजीको बुलाते हैं और पूछते हैं कि मेरेको नींद नहीं आ रही है। तो विदुरजीने कहा कि जो सच्चे आदमियोंसे वैर करेगा और

उनको कष्ट देना चाहेगा, उसे नींद नही आयेगी। उसे अशान्ति रहेगी ही। पाण्डवोके साथ खराब व्यवहार करके शान्ति चाहते हो? जिसका हृदय खराब होगा, उसे शान्ति नहीं मिलेगी। स्वार्थ सिद्ध करके जो यह सोचता है कि मै अपना काम बना लूं तो वह काम बना नहीं रहा है, बिगाड रहा है। इसमें यह जो स्वार्थ दीखता है, यह महान् पतनकी बात है। अतः इस थोड़ेसे जीवनमें जो सेवा अपनेसे बन सके, वह करे। चतुर वही है जो इस मनुष्य शरीरको पाकर अपना काम बना ले। सेवामें लग जाय, नाम जपमें लग जाय। सबमें रहते हुए, सबकी सेवा करते हुए, यदि यहांसे चल दिये, तो अपने तो आनन्द हो गया, मौज हो गई। परन्तु यदि यह ताकते रहेंगे कि मैं सुख ले लूँ तो सुख तो ले सकोगे नहीं, समय बरबाद कर दोगे। अतः अभीसे सच्चे हृदयसे भगवान्‌की तरफ लग जाओ। नाम जप कीर्तन करो, सेवा करो। कैसे आनन्द की बात है! यहाँ सदा रहना नहीं है। यहाँसे जाना पड़ेगा। राजा, महाराजा, सेठ, धनी, गरीब, भाई, बहिन, पण्डित, मूर्ख, कोई भी हो सबको यहाँसे जाना पड़ेगा।

निश्चिन्त होकर कैसे बैठे हो? किसके भरोसे निर्भय बैठे हो? भगवान्‌को याद करो। जो भगवान्‌के नामका जप मन लगाकर कर रहा है वह मर जाय तो आनन्द, और जी जाय तो आनन्द। मरें तो भगवान्‌का स्मरण करते हुए मरें और जियें तो भजनका संग्रह करें जिससे हम मालामाल हो जायेंगे। भजन साथमें जानेवाला धन

है। चोर इसे नहीं ले जा सकते, राजा इसे नहीं ले सकता। भाई-भाईके बँटवारेमें यह नहीं जा सकता। यह सदा साथ रहनेवाली सच्ची पूंजी है। ऐसी बढ़िया पूँजी है कि इससे भगवान्‌को खरीद लो।

एक कहानी है कि एक देशमें राजा बनाया जाता था। तीन वर्ष वह राजा रहता था, सब काम उसके हुक्मसे होता था। तीन वर्ष पूरा होनेपर उसको नौकामें बैठाते, विशेष-विशेष व्यक्ति नौकाको पहुँचाने जाते और उसको भयानक जंगलमें छोड़ देते। जहाँ उसको जंगली जानवर खा जाते। जबतक वह राजा रहता, तबतक तो प्रसन्न रहता।। परन्तु जिस दिन उसको विदाई देते, उस दिन रोता जाता। एक बार एक चतुर व्यक्तिके हाथमें राज्य आ गया। तो उसने खूब कार्य किये, दूसरी ओर सड़कें बनवाई, कुए बनवाये, मकान बनवाये, सब सुख सुविधाएँ कर दीं। तो तीन वर्ष बादमें लोगोंने कहा कि चलो। तो बोला— चलो। वह खूब मस्त हो रहा था। लोगोंने सोचा कि यह इतना मस्त क्यों हो रहा है। उससे पूछा कि तुम हँस क्यों रहे हो? वह बोला कि मैं तो हसूंगा; रोवोगे तुम। मैंने सब माल उस पार कर दिया है, वे लोग मूर्ख थे जिन्होंने हाथमें अधिकार आनेपर उसका उपयोग नहीं किया। आप भी सोच सकते हैं कि यदि हमें भी तीन वर्षोंके लिये ऐसा अवसर मिले तो हम भी इसका बढ़िया उपयोग करें। हमें यह शरीर तीन वर्षों (अर्थात् कुछ वर्षों) के लिए मिला है। अतः इसमें परमात्माका नाम लो,

भजन स्मरण करो, पुण्य करो या पाप करो। शुभ करो या अशुभ करो, स्वतन्त्रता मिली है। यदि अच्छे कार्य नही करते तो रोते है कि हाय, हाय मैने अच्छे कार्य नहीं किए, भजन स्मरण नही किया। परन्तु यदि व्यक्ति भजन-स्मरण करता है, दान-पुण्य करता है, सबका हित करता है, सेवा करता है, तो मस्तीसे, आनन्दसे मरता है। अत: धोखा मत खाओ, चेत करो, सावधान हो जाओ। यहाँ धोखा खानेके लिए नहीं आये हो। अब तक जो समय बीत गया, सो बीत गया, अब समय व्यर्थ मत गँवावो। भजन, ध्यान करो, सेवा करो। यह शरीरको सजाना, इसका श्रृंगार करना, कितने दिनों चलेगा? कहते हैं छूटता नहीं। तो छूटेगा नहीं क्या? विचार करो, वह दिन आनेवाला है जब यह सब छूट जायगा। जिस दिनका स्मरण करके डर लगता है, भय लगता है, वह दिन आयेगा। कब आयेगा, इसका पता नही क्योंकि मौतकी कभी छुट्टी नही होती। मौतके लिए सब घंटा, सब मिनट, सब सेकिण्ड खुले हैं। परन्तु बैठे हैं निश्चिन्त। तो क्या करें? भगवान्‌का भजन करें। प्रत्येक समय राम! राम! राम! करें और सेवा करें। बस फिर बेड़ा पार है।

नारायण! नारायण! नारायण!

।।श्रीहरि:।।

व्यवहारमें परमार्थ

अपने स्वार्थ व अभिमानका त्याग करके 'सबका हित कैसे हो' इस भावनासे बर्ताव करें। परिवारमें रहनेकी यह विद्या है। प्रत्येक कामको करनेका एक तरीका होता है, एक विद्या होती है, एक रीति होती है और उसमें चतुराई होती है, उसमें एक कारीगरी होती है। इसी प्रकार परिवारमें रहनेकी भी एक विद्या है। आप बेटा हो तो मां-बापके सामने सपूत-से-सपूत बेटा बन जाओ। जिसके भाई हो तो उनके लिए आप श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ भाई बन जाओ। जिसके आप पति हो, उसके लिए आप श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ पति बन जाओ। आप पिता हो तो पुत्र-पुत्रीके लिये श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ पिता बन जाओ। जैसा जिसके साथ सम्बन्ध है, उससे आपका श्रेष्ठ सम्बन्ध होना चाहिये। उनके साथ उत्तम-से-उत्तम बर्ताव करोगे तो वे लोग भी आपसे अच्छा बर्ताव करेंगे। तब परिवार ठीक रहेगा। आप कह सकते हैं कि परिवारके सब लोग इस तरह सोचेंगे, तब ठीक होगा, एक आदमी क्या करेगा? बात ठीक है; परन्तु आप अच्छा बर्ताव करना शुरू कर दो। उस अच्छे बर्तावके करनेसे

परिवारका बर्ताव भी अच्छा होगा, और परिवारमे बड़ी शान्ति होगी।

आप अपनी तरफसे ठीक बर्ताव करते रहो। उसमें एक और शूरवीरता ले आओ। रामायणमे आया है—

उमा संत कइ इहइ बड़ाई।
मंद करत जो करइ भलाई।।

(५/४०/४)

परिवारवाले आपके साथ खराब बर्ताव करें, आपको दुःख पहुँचावें, आपका अपयश करे, तिरस्कार करें, अपमान करें तो भी आप उनका नुकसान मत करो। उनको दुःख मत दो। उनको सुख दो, उनका आदर करो, उनकी प्रशंसा करो। उनको कैसे आराम पहुँचे— इस भावसे आप बर्ताव करोगे तो आपका परिवार आपके लिये दुःखदायी नही होगा। परिवारके सभी आपसमें ठीक बर्ताव करेंगे। इस जमानेमें इस बातकी बड़ी भारी आवश्यकता है।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

(गीता २/४७)

अपनी ओरसे आप परिवार वालोंके प्रति अपना कर्त्तव्य-पालन करो। दो चीजें हैं। एक होता है कर्त्तव्य, और एक होता है अधिकार। मनुष्य अधिकार तो जमाता है, कर्त्तव्य नहीं करता। यह खास बीमारी है, जिसके

कारण संसारमें और परिवारमें खटपट मचती है। वह अपना अधिकार रखना चाहता है, और कर्त्तव्य पालन करनेमे ढिलाई करता है, उपेक्षा करता है या कर्त्तव्य नही करता है। इसीसे गडबड़ी होती है। इसलिये अधिकार तो जमाओ मत और कर्त्तव्यमें किंचिन्मात्र भी कमी लाओ मत। उनके अधिकारकी पूरी रक्षा करो। उनका जो हमारेपर हक लगता है उस हकको ठीक निभाओ। आप उसपर अधिकार मत जमाओ कि हमारा लडका है, हमारा कहना क्यों नहीं मानता? हमारी स्त्री कहना क्यो नहीं मानती? भीतरमें यह अधिकार मत रखो। कहना हो तो कह दो-प्रेमसे, स्नेहसे, आदरसे, अपनेपनसे, पर भीतरसे आग्रह मत रखो कि स्त्री-पुत्र मेरे कहनेमें ही चले।

परिवार जितना आपके कहनेमें चलेगा, उतना ही आपके अधिक बन्धन होगा। जितना ही वह आपका कहना नहीं करेगा, उतना ही छुटकारा होगा, उतनी ही आपमें स्वतन्त्रता होगी, उतना ही आपको लाभ है। जितना वे कहना अधिक करेंगे, उतना ही आपको बन्धन होगा। मनुष्यको यह अच्छा लगता है कि दूसरे लोग मेरे अनुकूल चलें, मेरा कहना मानें। परन्तु यह बन्धन-कारक है। जहर चाहे मीठा ही हो, पर मारनेवाला होता है। इसी प्रकार अनुकूलता आपको भले ही अच्छी लगे, पर वह बांधनेवाली है। वे उच्छृंखलता करें तो भी आप अच्छा-से-अच्छा बर्ताव करो। वे चाहे

उम्रभर बुरा ही करे तो भी आप उकताओ मत। आपके लिये बहुत ही बढ़िया मौका है। उनके बुरा करनेपर भी आप अपना बर्ताव अच्छे-से-अच्छा करो।

एक सज्जन थे। उन्होंने कहा कि आप कुछ भी करो मेरेको गुस्सा नहीं आता। आप परीक्षा करके देख लो। दूसरेने कहा कि आपको गुस्सा नहीं आता बहुत अच्छी बात है। आपको क्रोध दिलानेके लिये मैं अपना स्वाभाव क्यों बिगाड़ूँ? तो सदैव यह भाव रहे कि हम अपना स्वाभाव अच्छा रखें।

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धि लभते नरः।

(गीता १८/४५)

अपने कर्त्तव्यका ठीक तरह पालन करो। उसका नतीजा अपने लिये भी ठीक ही होगा। परिवारके साथ इस तरह बर्ताव करोगे तो लोक और परलोक दोनों सुधरेंगे। यहाँ भी आपका भला होगा और वहाँ भी। गीतामें कहा है '**नायं लोकोऽस्त्य यज्ञस्य कुतोऽन्यः**(गीता (४/३१)जो यज्ञ नहीं करता उसका यह लोक भी ठीक नहीं होता, फिर परलोक कैसे ठीक होगा? यहाँ ''यज्ञ'' का अर्थ कर्त्तव्य-पालन है। अपने कर्त्तव्यका पालन नहीं करता तो इस लोकमें भी सुख नहीं पाता और परलोकमें भी। जो अपना ही स्वार्थ सिद्ध करना चाहता है, अपना ही आराम चाहता है, उसका संसारमें भी आदर नहीं होता, और पारमार्थिक उन्नति भी नहीं होती। जो अपने स्वार्थ और अभिमानका

त्याग करके दूसरोंके हितके लिये काम करता है, वह संसारमें भी अच्छा माना जाता है। परमार्थ भी उसका शुद्ध हो जाता है। वह लोक और परलोक दोनों जगह सुख पाता है।

कुछ लोगोंमें यह धारणा है कि हम आध्यात्मिक उन्नति करेंगे तो व्यवहार ठीक नहीं होगा और संसारका व्यवहार ठीक करेंगे तो परमार्थ सिद्ध नहीं होगा। यह धारणा सही नहीं है। गीतामें इन दोनोंका समन्वय है, अच्छा बर्ताव करो तो अपना लोक परलोक दोनों सुधर जायेंगे। व्यवहार भी अच्छा होगा और परमार्थ भी अच्छा होगा। व्यवहारमें ही परमार्थकी कला सीख लो। जैसे-एक उदाहरण बतायें। कोई दयालु जज होता है तो वह न्याय नहीं कर सकता, और न्याय पूरा का पूरा ठीक करता है तो दया नहीं कर सकता। दया करे तो रियायत करनी पड़े, तो न्याय नहीं कर सकता। और न्याय ठीक-ठीक करे तो दया कैसे होगी? परन्तु भगवान्‌की ऐसी बात है कि भगवान् दयालु भी हैं और न्यायकारी भी हैं। इन दोनोंमें बाधा नहीं लगती, क्योंकि भगवानके कानून ही ऐसे बनाए हुए हैं कि उन कानूनोंमें दया भरी हुई है। जैसे भगवान्‌ने कहा अन्तकालमें मनुष्य जिसका स्मरण करता है, उसीके अनुसार गति होती है।

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः।।

(गीता ८/६)

यह कानून है कि जिस जिस भावका स्मरण करता हुआ मनुष्य जाता है, वह आगे उसी भावसे भावित होता हुआ उसी जन्मको प्राप्त होता है। अन्तकालके चिन्तनके अनुसार गति हो जाती है। ''अन्त मति सो गति''। यह हुआ भगवान्‌का कानून। भगवान् कहते हैं कि अन्तकालमें मुझे याद करेगा तो मुझे प्राप्त हो जायगा। परमात्माकी प्राप्तिके लिये अन्तकालमें परमात्माका चिन्तन करे परमात्माकी प्राप्ति हो जाय। इसमें दया क्या भरी हुई है कि जितने दामोंमें कुत्तेकी योनि मिले उतने ही दामोंमें परमात्माकी प्राप्ति हो जाय। क्या खर्च हुआ बताओ? कुत्तेको याद करते हुए मरोगे तो कुत्ता बन जाओगे और परमात्माको याद करते हुए मरोगे तो परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी तो इसमें अपने लिये भगवान्‌ने कोई रियायत नहीं की। कानून है, इसका कोई भी पालन कर लो, और इस कानूनमें कितनी दया भर दी। जिस चिन्तनसे चौरासी लाख योनि मिलती हैं, उसी चिन्तनसे भगवत्प्राप्ति हो जाय, सदाके लिये जन्म मरण मिट जाय। यह कानून है। कानून भी है, दया भी है। इसी तरह व्यवहार ठीक करनेसे परमार्थ भी सुधरता है। व्यवहार का काम ठीक करनेसे परमार्थ नहीं बिगड़ता। झूठ, कपट, बेईमानी, धोखेबाजी करते हो तो उससे परमार्थ बिगड़ता है। लोगोंको इसमें लाभ दीखता है, पर लाभ नहीं है।

किसीके साथ कपट करोगे, द्वेष करोगे, चालाकी

करोगे, ठगी करोगे तो जैसे कि कहा है– 'हॉडी काठकी चढ़े न दूजी बार।' काठकी हॉडीको एक बार चूल्हे पर चढ़ा दो, तो दुबारा चढ़ेगी क्या? ऐसे ही एक बार भले ही ठगी कर लो, पर उसके साथ खटपट हो जायगी। व्यवहार भी ठीक नहीं होगा। अतः अपने स्वार्थका त्याग और दूसरोंके हितकी भावनासे व्यवहार ठीक होगा और व्यवहार ठीक होगा तो परमार्थ भी ठीक होगा। स्वार्थ और अहंकारका त्याग करनेसे काम ठीक होता है। यह बहुतही लाभकी बात है।

भगवद्गीता व्यवहारमें परमार्थ सिखाती है। गीता पढ़ो। गीताका अध्ययन करो। उसपर विचार करो और उसके अनुसार अपना जीवन बनाओ। देखो कितनी मौज होती है! कितना आनन्द आता है स्वाभाविक ही। गीता बतलाती है कि व्यवहार ठीक तरह करो तो परमार्थ स्वतः सिद्ध हो जायगा। सिद्धान्त यह है कि परमार्थ तो स्वतः सिद्ध है। बिगड़ा तो व्यवहार ही है, और कुछ बिगड़ा ही नहीं है। न जीवात्मा बिगड़ा, न परमात्मा बिगड़ा, न कल्याण बिगड़ा है। बिगड़ा है केवल व्यवहार। व्यवहार शुद्ध कर लो। सब काम सिद्ध हो

नारायण! नारायण! नारायण!

।।श्रीहरिः।।

क्रोधपर विजय कैसे हो?

जैसे आप हिसाब सीखते हो तो उस हिसाबका गुर सीख लेते हो तो वह हिसाब सुगमतासे हो जाता है। ऐसे ही हरेक प्रश्नका एक गुर होता है, उसको आप लोग सीख लो तो प्रश्नका उत्तर स्वतः आ जायगा।

प्रश्न आया है कि हम क्रोधपर विजय कैसे पावें? तो क्रोध पैदा किससे होता है? गीताने कहा— 'कामसे ही क्रोध पैदा होता है'— 'कामात्क्रोधोऽभिजायते (२/६२)। वह काम (कामना) क्या है? मनुष्यने यह समझ रखा है कि 'धन, सम्पत्ति, वैभव आदिकी कामना होती है'— ये भी सब कामना ही है, पर मूल—असली कामना क्या है? 'ऐसा होना चाहिये और ऐसा नहीं होना चाहिये'— यह जो भीतरकी भावना है, इसका नाम कामना है।

आप पहले यह पकड़ लेते हो कि 'ऐसा होना चाहिये' और वह नहीं होगा तो क्रोध आ जायगा, कोई वैसा नहीं करेगा तो क्रोध आ जायगा। 'ऐसा नहीं होना चाहिये' और कोई वैसा करेगा या उससे विपरीत कहेगा तो क्रोध आ जायगा। ऐसा होना चाहिये और ऐसा नहीं होना चाहिये— यही क्रोधका खास कारण है।

ऐसा होना चाहिये और ऐसा नहीं होना चाहिये– इस कामनामें कोई फायदा नहीं है; क्योंकि दुनियामात्र हमसे पूछकर करेगी क्या? हमारे मनके अनुसार ही करेगी क्या? आप अपनी स्त्री, अपने पुत्र, अपने नौकर आदिसे चाहते हैं कि ये हमारा कहना करे तो क्या उनके मन नहीं हैं? क्या उनकी कोई धारणा नहीं है? उनकी कोई कामना, चाहना नहीं है? ऐसा करूँ और ऐसा न करूँ– ऐसा उनके मनमें नहीं है क्या? अगर उनका मन इससे रहित है, तब तो आप कहें, वैसा वे कर देंगे, पर उनके मनमें भी तो 'ऐसा करूँ और ऐसा न करूँ' ऐसी दो बातें पड़ी हैं तो वे आपकी ही कैसे मान लें? आपकी ही वे मान लें तो फिर आप भी उनकी मान लो। जब आप भी उनकी माननेके लिये तैयार नहीं हैं तो फिर अपनी बात मनवानेका आपको क्या अधिकार है? इसलिये 'ऐसा होना चाहिये और ऐसा नहीं होना चाहिये'– यह भाव मनमें आ जाय तो 'ये ऐसा ही करें' अपना यह आग्रह छोड़ दो। इस आग्रहमें अपना अभिमान अर्थात् मैं बड़ा हूँ इनको मेरी बात माननी चाहिये – यह बड़प्पनका अभिमान ही खास कारण है, और वैसा न करनेसे अभिमान ही क्रोधरूपसे हो जाता है।

अगर आप शान्ति चाहते हो तो अभिमानको मिटाओ; क्योंकि अभिमान सम्पूर्ण आसुरी सम्पत्तिका मूल है। अभिमानरूप बहडियाकी छायामें आसुरी सम्पत्तिरूप कलियुग रहता है। आसुरी सम्पत्तिके क्रोध, लोभ, मोह,

मद, ईर्ष्या, दम्भ, पाखण्ड आदि जितने अवगुण है, वे सब अभिमानके आश्रित रहते हैं, क्योंकि अभिमान उनका राजा है। उसको आप छोड़ते नहीं तो क्रोध कैसे छूट जायगा! इसलिये उस अभिमानको छोड़ दो।

छोड़नेका उपाय क्या है? जो लोग आपका कहना नहीं करते, वे तो आपके अभिमानको दूर करते है और जो आपका कहना करते हैं वे आपके अभिमानको पुष्ट करते हैं– यह बात आपके जॅचती है कि नहीं? जो कहना नहीं करते, वे आपका जितना उपकार करते हैं, जितना हित करते हैं; कहना करनेवाले उतना उपकार, हित नहीं करते। अगर आप अपना हित चाहते हो तो आपके अभिमानमें जितनी टक्कर लगे, उतना ही बढ़िया है अर्थात् वे कहना न करें, उतना ही बढ़िया है। कहना न करनेमें आपके लाभ है, हानि नहीं है। अभिमान पुष्ट करनेके लिये वे बढ़िया हैं, जो कहना करते हैं; परन्तु आपका अभिमान दूर करनेके लिए वे बढ़िया हैं, जो कहना नहीं करते हैं। इसलिये आपको तो उनका उपकार मानना चाहिये कि वास्तवमें हमारा हित इस बात में है।

यद्यपि वे जानकर हित नहीं करते हैं कि भाई, तुम्हारा अभिमान दूर हो जाय, इसलिये हम आपका कहना नहीं करेंगे फिर भी आपके तो फायदा ही हो रहा है, वे आपके अभिमान को दृढ़ नहीं कर रहे हैं अर्थात् आपका अभिमान दृढ़ नहीं हो रहा है। आप अपना हित चाहते हो कि अहित चाहते हो? कल्याण चाहते हो कि पतन चाहते हो? अगर

आप कल्याण चाहते हो तो कल्याण आपका निरभिमान होनेसे है और निरभिमान आप तभी होगे, जब आपका कहना कोई नहीं मानेगा। अगर कहना मानता रहेगा तो आपका कहना सब जगह डटा रहेगा और यही अभिमान है, यही आसुरी सम्पत्ति है– 'दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोध, (१६/४) तो जो आपका कहना नहीं मानते, वे आपपर बड़ी भारी कृपा कर रहे हैं। आपकी आसुरी सम्पत्ति हटाकर आपमें दैवी सम्पत्ति ला रहे हैं।

अब प्रश्न आया है कि कहना नहीं माननेसे तो बालक उद्दण्ड हो जायेंगे? आपका कहना माननेसे आप अभिमानी हो जायेंगे और आपका कहना नहीं मानते तो वे उद्दण्ड हो जायेंगे– इन दोनोंपर गहरा विचार करो। आप नहीं रहोगे तो मनमानी करके उद्दण्ड तो फिर भी हो जायेंगे, परन्तु आपका अभिमान दूर कैसे होगा? उद्दण्ड तो आपके बिना भी हो जायेंगे, पर आपका अभिमान तो दूर नहीं होगा। इसलिये आपको अभिमान तो पहले दूर कर ही लेना चाहिये।

दूसरी बात यह है कि आप उनपर रौब नहीं जमाओगे तो आपकी सौम्यावस्था और निरभिमान-अवस्थाका असर उनपर पड़ेगा जिससे वे उद्दण्ड नहीं होंगे, ठीक हो जायेंगे। आप कह दो कि भाई, ऐसा काम नहीं करना चाहिये फिर भी वे वैसा ही करें तो आप शान्तिसे चुप-चाप रहो। कारण कि वे उद्दण्डता करेंगे तो उनको वैसा फल मिलेगा। फल मिलनेसे उनको चेत होगा जिससे उनकी

उद्दण्डता स्वतः मिटेगी। उनको चेत होकर जो उद्दण्डता मिटेगी, वह आपके कहनेसे नहीं मिटेगी, क्योंकि उसके मनमें तो अपनी बात भरी रहेगी और आपकी बात ऊपरसे कलई जैसे रहेगी, वह कलई उतर जायगी तो इससे उद्दण्डता कैसे मिटेगी? उसकी उद्दण्डता मिटानेका सही उपाय यही है कि आप अपने अभिमानको दूर करो।

मनुष्यको परिवारमे रहना है तो परिवारमे रहना सीख लेना चाहिये। परिवारमे रहनेकी यह विद्या है कि उनका कहना करो, उनके मनके अनुसार चलो। अपना जो कर्त्तव्य है, उसका तो पालन करो और उनकी प्रसन्नता लो।

परिवारमें रहना क्या है? आपके कर्त्तव्यका आपपर दायित्व है। आपका कर्त्तव्य क्या है? स्त्री माने, न माने, पुत्र माने, न माने; भाई माने, न माने; मां-बाप माने, न माने; भौजाई और भतीजे माने, न माने; आप अपने कर्त्तव्यका ठीक तरह पालन करे। वे अपना कर्त्तव्य पालन करते है या नहीं करते, उधर आप देखो ही मत। क्योंकि जब आप उनके कर्त्तव्यको देखते हो कि 'ये उद्दण्ड न हो जाय।' ऐसे समयमें आप अपने कर्त्तव्य से च्युत ही हैं, आप अपने कर्त्तव्य से गिरते हो; क्योंकि आपको दूसरोंका अवगुण देखनेके लिये कर्त्तव्य कहाँ बताया है? शास्त्रों में कहीं भी यह नही बताया है कि तुम दूसरोंका अवगुण देखा करो; प्रत्युत यह बताया है कि यह संसार गुणदोषमय है—

सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिअहिं देखिअ सो अबिबेक।।

(मानस ७/४१)

दूसरोंमें गुण है, उनको तो भले ही देखो, पर अवगुण मत देखो। अवगुण देखोगे तो वे अवगुण आपमें आ जायेंगे और अवगुण देखकर उनको उद्दण्डतासे बचानेके लिये क्रोध करते हो तो क्रोधसे आप नहीं बच सकते। इसलिये आप अपना कर्त्तव्य-पालन करो। दूसरोंका न कर्त्तव्य देखना है और न अवगुण देखना है। हाँ, लड़का है तो उसको अच्छी शिक्षा देना आपका कर्त्तव्य है, उसको अच्छी बात कहो, इतना तो आपका कर्त्तव्य है, पर वह वैसे ही करे— यह आपका कर्त्तव्य नहीं है। यह तो उसका कर्त्तव्य है। उसको कर्त्तव्य बताना— यह आपका कर्त्तव्य नहीं है। आपका तो सिर्फ इतना ही है कि भाई, ऐसा करना ठीक है, ऐसा करना ठीक नहीं है। अगर वह कहे— 'नहीं-नहीं बाबूजी', ऐसे करेंगे, तो कह दो— 'अच्छा ऐसे करो'! 'यह बहुत ही बढ़िया दवाई है'। मैं नही कहने योग्य एक बात कह रहा हूँ कि 'इस दवाईका मै भी सेवन कर रहा हूँ।' आपको जो दवाई बतायी, यह बहुत बढ़िया दवाई है— आप कहो— 'ऐसा करो' और अगर वह कहे नहीं, हम तो ऐसा करेंगे। अच्छा, ठीक है ऐसा करो।

रज्जब रोस न कीजिये कोई कहे क्यूँ ही।
हँसकर उत्तर दीजिये हाँ बाबाजी यूँ ही।।

अन्याय हो, पाप हो तो उसको अपने स्वीकार नही करेगे। अपने तो शास्त्रके अनुसार बात कह दी और वे नही मानते तो शास्त्र क्या कहता है? क्या उनके साथ लडाई करो! या उनपर रोब जमाओ! आपका तो केवल कहने का अधिकार है– '**कर्मण्येवाधिकारस्ते**' (२/४७) और वे ऐसा ही मान ले– यह फल है, आपका अधिकार नही है– '**मा फलेषु कदाचन**' (२/४७) आपने अपनी बारी निकाल दी, बस। कर्त्तव्य तो आपका कहना ही था, उनसे वैसा करा लेना आपका कर्त्तव्य थोडा ही है! वैसा करे, यह कर्त्तव्य उनका है। अपने तो कर्त्तव्य समझा देना है। उसने कर्त्तव्य पालन कर लिया तो आपके कल्याण मे कोई बाधा नही और वह नहीं करेगा तो उसका नुकसान है, आपके तो नुकसान है नही, क्योकि आपने तो हितकी बात कह दी। यह बहुत मूल्यवान बात है!

नारायण! नारायण! नारायण!

।।श्रीहरि.।।

ममता त्यागसे नित्य सुख

मूलमें ममता छोडना चाहते नही। यहाँ ही गलती होती है। ममता छूटती नहीं– यह बात नहीं है; आप छोड़ना चाहते नहीं। अब छोड़नेकी चाहना पैदा कैसे हो– यह खास प्रश्न है। इसमें आप ध्यान देकर सुने और खूब ठण्डे हृदयसे विचार करें कि जिनके साथ आपकी ममता है। सबसे अधिक शरीरके साथ, इसके बाद कुटुम्बी, धन-सम्पत्ति आदिके साथ ममता है, ये ममतावाली चीजें सदा साथ रहेंगी क्या? जैसे आप पहले किसी शरीर में थे, तो उस समय वे शरीर, कुटुम्बी आदि अपने दीखते थे, पर आज उनकी याद भी नही है। तो आज जिनमें आप ममता कर रहे हो, ये चीजें मरनेके बाद याद तक नहीं रहेगी, क्योंकि ये वस्तुएँ तो छूटेंगी ही। वस्तुएँ तो छूटेंगी, परन्तु उनमें आपका जो राग है, ममता है– यह मरनेके बाद भी आपके साथ रहेगा। इसलिये यह ममता सिवाय जन्म-मरण, दुःख देनेके कुछ लाभ देनेवाली नहीं है।

पदार्थ छूटेंगे, ममतावाली वस्तुएँ छूट जायेंगी, परन्तु ममता भीतर बनी रहेगी। आगे चलकर वही ममता,

आसक्ति और कामना पैदा करके बन्धनमे ही बन्धनमे डालेगी इसके सिवाय कुछ नही। जब छूटने वाली वस्तुओसे ही ममता छोडनी है तो इसमे जोर क्या आवे? जरूर छूटनेवाली वस्तुओकी ममता छोडनेसे निहाल हो जाओगे, मुक्त हो जाओगे। ममता रहते हुए मौत आवेगी तो भी वस्तुओसे सम्बन्ध-विच्छेद होगा और त्याग करनेसे भी वस्तुओंसे सम्बन्ध-विच्छेद होगा। परन्तु मौतमे पराधीनता है और त्यागमे स्वाधीनता है। मौतमे अशान्ति है और त्यागमें शान्ति है। मौतमे बाहरसे सम्बन्ध छूट जाता है, पर भीतर ममता आसक्ति रहनेसे महान् दु:ख होता है और त्यागमें भीतरसे सम्बन्ध छूट जाता है तो बाहरसे सम्बन्ध छूटनेपर भी हानि नही होती, प्रत्युत महान् आनन्द होता है।

मेरी तो एक ही प्रार्थना है कि आप इन बातोपर दलील दो, सुनो और विचार करो। ममता रखनेसे हानि ही हानि है और ममता छूटनेसे आपके किसी तरहकी हानि नहीं होगी, दु:ख नहीं होगा और सुखमे कमी नही आयेगी। जैसे, इस मकानको आप सब भाई अपना नहीं मानते तो क्या इसमे बैठने का सुख आपको नही मिलता है? क्या यहॉके प्रकाशका सुख हमारेको नही मिलता है? यहॉ पखे चलते हैं, इनसे हमारेको सुख नहीं मिलता है क्या? यहॉ माइकपर बोलते हैं, सुनते हैं तो इससे हमारे को सुख नहीं मिलता है क्या? तात्पर्य यह हुआ कि अपनापन छूटने पर भी सुख मिलना छूटेगा नही! अपनी ये चीजें नही है और

सुख ले रहे है तो सुख लेने पर भी हम निर्लेप रहेगे अर्थात् यहाँसे चल दे, पखा टूट जाय, बिजली जल जाय तो अपने कोई चिन्ता नही होगी, फर्क क्या है? ममता नही है। जिसके ममता होगी उसके चिन्ता लग जायगी, खलबली मच जायगी। खलबली मचानेके और आगे जन्मदेने के सिवाय ममतासे कोई-सा भी फायदा नही है और नुकसान कोई-सा भी बाकी नही है। यह बनिया (वैश्य) जाति बड़ी स्वार्थी होती है। यह नुकसानके तो नजदीक नही जाती और नफा इनको अच्छा लगता ही है। ममता छोडनेसे नुकसान कुछ नही है और रखनेसे सभी नुकसान है, फायदा कोई-सा नही है। क्योकि पहले ये चीजे थीं नही और आगे ये रहेगी नहीं। इनमे झूठी ममता कर लेते हैं तो बार-बार दु.ख पाना पड़ेगा। इस बातको आप समझो और शका हो तो अभी पूछो!

आप जिसको अपना मानते हो; कुटुम्बको, धनको, घरको, शरीरको अपना मानते हो कि ये मेरे है। तो क्या ये पहले मेरे थे? क्या फिर अपने रहेंगे? अपने थे नही और रहेंगे नही। दूसरी बात, आप जिनमें ममता रखते हो, उनको बदल सकते हो क्या? 'छोरा मेरा है' तो उसको भी अपनी आज्ञाके अनुसार चला सकते हो क्या? अपने शरीरको भी चाहे जैसा स्वस्थ रख सकते है क्या? कम-से-कम उसको मरने तो दोगे ही नही? धन आपके पास है, उसको रख लोगे? है हाथकी बात? शरीर बीमार भी हो जायगा, मर भी जायगा, छोरा भी नहीं मानेगा।

स्वार्थमें रत रह कर नाना प्रकारके पाप करता है। मूढ़ता भरी है भीतरसे, वहम रहता है कि मै ठीक कर रहा हूँ, पर कर रहा है अपने आप अपनी हत्या, अपना पतन और अपना नुकसान।

सज्जनो! कृपा करके आजसे अन्याय छोड दो, पाप मत करो। अगर शाति, सुख चाहते हो तो दूसरोका हक लेनेका विचार मत रखो नही तो कोई बचा नही सकेगा, महान् कष्टमे जाना ही पडेगा; क्योकि पापोको पकड लिया आपने, पापके बापको भी पकड लिया।

एक कहानी आती है। एक अच्छे पण्डितजी कथा कहते थे, लोगोको सुनाते, पढाते थे। एक दिन पण्डितजीकी स्त्रीने कह दिया कि महाराज! पापका बाप कौन है? तो पण्डितजी बता नही सके। बडा दुःख हुआ कि मै इतना पढा-लिखा पण्डित हूँ और यह तो कुछ नही जानती, पर मुझे इसके प्रश्नका भी उत्तर आया नहीं। तो पश्चाताप हुआ और उठ कर चल दिए कि तेरे प्रश्नका उत्तर दिए बिना मैं तेरे हाथकी रोटी नही खाऊँगा। स्त्रीने बहुत अनुनय-विनय किया; पर पण्डितजीने कहा कि नही। स्त्रीको दुःख हुआ, पर विचार किया कि सुधार हो जाय तो अच्छी बात है, इस कारण चुपचाप रही।

वह जाने लगा, बीचमे एक वेश्याका घर था। वह पण्डितजीको जानती थी। उसे इस बातका आश्चर्य आया कि आज पण्डितजी उदास होकर कैसे जा रहे है!

सकता है या ममता न रखनेवाला ज्यादा कर सकता है-ठण्डे हृदयसे आप सोचे। आपको चेला बना ले कि यह मेरा चेला है, और एक चेला न बनाकर आपको बात कहे तो ममतावाला ज्यादः लाभ देगा कि विना ममतावाला। यह आप सोच लो आपके अकलमे आती होगी।

स्वार्थवाला सच्ची बात कहेगा कि बिना स्वार्थ वाला? और सुधार किस बातसे होगा। आप भी समझते हो कि आपका हित सम्बन्ध जोड़नेमें है कि सम्बन्ध तोड़नेमें। ममता रखनेमे सिवाय हानिके कुछ नहीं है और छोडनेमें सिवाय लाभके कुछ नही है। इन बातोंपर विचार करो।

नारायण! नारायण! नारायण!

।।श्रीहरि.।।

भय और आशाका त्याग

प्रश्नः– साधन, भजन, सत्संग करते है फिर भी संसार के प्रवाहका असर क्यो पड जाता है?

उत्तर– देखो भैया! मै एक बात कहता हूॅ उसकी तरफ ध्यान दे। संसारका प्रभाव किसपर पड़ता है? गहरा विचार करना। ससारका प्रभाव ससारपर ही पड़ता है। स्वरूपपर ससारका प्रभाव नही पडता। पहले प्रभाव पडा और अभी प्रभाव नहीं रहा। यह ज्ञान है कि नही? इसका उत्तर दो।

प्रश्न– एक बात मन मे आती है कि ये सत्सगमें तो जंच जाता है पीछे नहीं रहता।

उत्तर– पीछे मत रहो। सत्संगमे जंच गई है न। तो पीछे रहना तुम देखना चाहते हो, यही बहुत बडी गलती है। उसका सुधार कर लो अभी। सुधार यह है कि यह व्यवहारमे नही रहता अर्थात् अन्त·करणमें नही रहता, और अन्तःकरणमें वृत्तिया तो व्यवहारके अनुसार होगी। अगर.वैसे वृत्तिया न हो तो व्यवहार कैसे होगा? भोजन ही कैसे होगा? बोलना भी कैसे होगा? चलना भी कैसे होगा? कुछ भी बोलना न हो तो कैसे होगा? जैसा

व्यवहार होगा वैसी वृत्तिया होंगी, पर व्यवहार औ एकान्त दोनोंका ज्ञान किसीको होता है कि नही होता है दोनोंका ज्ञान जिसको होता है उसके ज्ञानमें व्यवहार औ एकान्त है। इस बातको समझ लो तो अभी निहाल हे जाओ।

मानो व्यवहार और व्यवहाररहित अक्रिय अवस्था। अक्रिय और सक्रिय– ये दोनों अवस्थाएँ हैं। दोनों ही प्रवृत्ति हैं। अक्रिय भी प्रवृत्ति है और सक्रिय भी प्रवृत्ति है। ये तो तुमने सुना ही होगा कि सक्रिय प्रवृत्ति और अक्रिय प्रवृत्ति नहीं है, परन्तु अक्रिय भी प्रवृत्ति है और सक्रिय भी प्रवृत्ति है। अक्रिय और सक्रिय जिस प्रकाशमें प्रकाशित होते हैं उस प्रकाशमें प्रवृत्ति नहीं है। वह प्रकाश एकान्तमें बैठे हुए साफ दीखता है, व्यवहार करते हुए नहीं दीखता है। तो न दीखनेपर भी व्यवहारमें प्रवृत्तिका ज्ञान किसको हो रहा है? प्रवृत्ति भी तो जाननेमे आती है। आती है न? तो जाननापन तो रहता है कि नहीं? केवल जानना है उसमें प्रवृत्ति निवृत्ति दोनों नहीं हैं। बड़ी सीधी बात है, बहुत ही सरल बात है कि प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों जिससे प्रकाशित होते हैं, उसमें प्रवृत्ति निवृत्ति कुछ नही हैं। न प्रवृत्ति है न निवृत्ति है। समझमें आ गया न? तो इसमें तुम डटे रहो। वृत्तियोंका एक रूप देखना छोड दो आज से। वृत्तियां एक रूप बनी रहें। ये आज तुम छोड दो मेरे कहने से। ये जब तक पकड़े रहोगे, तब तक तुम्हे सन्तोष नहीं होगा। और ये आज ही छोड़ दो।

अभी-अभी। व्यवहारमे कैसे ही रहो। क्योकि वास्तव मे नित्य रहने वाली चीज तो प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनोंका प्रकाशक है। तो निवृत्तिको क्यो इतना महत्त्व देते हो। वास्तविक तो प्रकाश है। प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनो जिस प्रकाश से प्रकाशित होते है, वह प्रकाश वास्तविक है। प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनो अवास्तविक है। प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनो सापेक्ष है। प्रवृत्तिकी दृष्टिसे निवृत्ति है और निवृत्तिकी दृष्टिसे प्रवृत्ति है। वास्तवमे जो प्रकाश है उसमे न निवृत्ति है न प्रवृत्ति है। ठीक है न यह? तो इसमे तुम्हारी स्थिति है। मेरे कहनेसे मान लो। और यह जो बहम है कि प्रवृत्ति जब तक रहती है और बीचमे जो असर पडता है, तब तक हम तो ठीक नही हुए, यह बहम छोड दो।

ध्यान देना इस बातपर। किसके द्वारा छूटता है? कि निवृत्ति आई, प्रवृत्ति गई। निवृत्ति गई प्रवृत्ति आई। कहाँ गई, कहा आई बताओ। प्रवृत्ति-निवृत्तिका अभाव हुआ कि नही? इनका अभाव हुआ तो 'द्वारा' की जरूरत क्या? एक ऐसा आग्रह छोड दो। किसके द्वारा कि तुम्हारे खुद के द्वारा। 'ऐसी वृत्ति निरन्तर रहे' यह आग्रह छोड दो। इसमें हानि नही होगी। बहुत साफ है इसमे सन्देह नही है। प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनो प्रकाशित होती है स्वतः और ये होती रहे। अपने कोई मतलब नहीं है। दुनिया मात्र मे प्रवृत्ति और निवृत्ति होती है कि नही? जागृतमे काम करते है। नीदमे काम नही करते। दीखता है न।

उससे तुम्हारे क्या फर्क पड़ता है? दुनियामे जो प्रवृत्ति होती है उससे तुम्हारेमें फर्क पड़ता है क्या? तुम्हारे प्रकाशमें जो स्वयं प्रकाश स्वरूप है उसमें फर्क नहीं पड़ता हैं न। तो इसकी चिन्ता क्यों करते हो? ये जो संसारकी प्रवृत्ति निवृत्ति है वही तुम्हारे शरीरकी प्रवृत्ति निवृत्ति है। दोनों बिल्कुल एक धातु की हैं।

प्रश्न— संसारके प्रवाहमें बह जाते हैं जिससे सन्तोष नही होता।

उत्तर— यह तो गलती करते हो। सन्तोष क्यो नही होता है? इसका कारण है कि आप समझते है कि अन्तःकरण निर्विकार रहे— यह आपने पकड़ लिया। अन्तःकरण निर्विकार नहीं होता— यह पकड़ छोड दो। अन्तःकरण निर्विकार रहना चाहिए— यह छोड़ दो। निर्विकार कैसे रहेंगे, जब यह कार्य है प्रकृत्ति का? यह निर्विकार कैसे रहेगा? इसमें तो विकार होगा।

प्रश्नः— महाराज जी! एक बात कहूँ, आप कहते हैं न कि ये छोड़ दो। तो एक भय-सा लगता है। ऐसा विचार आता है कि छोड़नेसे कहीं मेरा पतन न हो जाय।

उत्तरः— इसीलिये मैंने बार-बार कहा कि मेरे कहनेसे छोड़ दो। यह क्यों कहा? क्योंकि भय है तुम्हें। तुम्हारे भय का असर है मेरेपर। तुम भयभीत हो रहे हो। इसलिये कहता हूँ तुम डरो मत। जब तक यह पकड है, तब तक वास्तविक स्थिति नहीं होगी। वास्तविक स्थितिमें यह पकड़ ही बाधक है और कोई बाधक नही

है। प्रकाशमें पतन होता ही नही। प्रवृति - निवृत्ति दोनोंमे प्रकाश समान रहता है। ये बताओ उसमें फर्क पड़ता है क्या? उसमे फर्क नही पडता तो उसका पतन कैसे हो जायगा? तुम मानते हो अन्तःकरणमें निर्विकारता आ जाय। अगर आ जाय तो—

प्रकाशं च प्रवृर्ति च मोहमेव च पाण्डव।
न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति।।
(गीता १४।२२)

ये कहना कैसे बनता? प्रकाश, प्रवृत्ति और मोह अगर होता, तो 'न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति' कैसे कहते?

प्रश्नः— यह तो महाराज जी उन महापुरुषोंकी बात है जिनको साक्षात्कार हो गया।

उत्तरः— वे महापुरुष हम ही हैं। वे महापुरुष अलग नहीं है। हम ही महापुरुष हैं। प्रकाशका नाम ही महापुरुष है। डरो मत इसमें। बिल्कुल डर नही। ये जो सामान्य प्रकाश है, इस स्थितिवालेको ही महापुरुष कहते है। महापुरुष कहो चाहे ब्रह्म कहो। उस सामान्य प्रकाशमे क्या फर्क पडता है? तो सामान्य ब्रह्म है वह एक है। एक तो भय छोड़ दो। और एक आगे कुछ विलक्षणता होगी, इस आशा को छोड़ दो। ये दो छोड दो। ये दो ही बाधक हैं असली।

निषिद्ध आचरणकी इच्छा हो जाती है। तो निषिद्ध

आचरण छूट जायगा। यह सुनकर डर लगता है न। तो छोडते डर लगता है इससे सिद्ध होता है कि निषिद्ध आचरणको आपने महत्त्व दिया है। और महत्त्व देकर छोड़ते हैं तो कैसे छूटेगा उसका आदर आपने कर दिया। उपेक्षा करो। एक करना, एक न करना दो चीज हुई। और एक उपेक्षा तीसरी चीज हुई। क्रिया करनेमे तो विधि करना है, निषिद्ध नहीं करना है। परन्तु भीतरमें विधि और निषेद्ध दोनोंसे उदासीन रहो। क्योंकि विधि और निषेध दोनों दीखते हैं किसी प्रकाशमें। उस प्रकाश का संबंध न विधिके साथ है और न निषेधके साथ है। विधिका संबंध निषेधके साथ है। निषेधकी निवृत्ति करनेके लिए विधि है। विधि रखनेके लिए विधि नही है। **इसलिये विधि-निषेध, भय और आशा— ये दोनों छोड़ दो।** बात ख्यालमें आयी कि नहीं? मेरी बात समझमे आयी कि नहीं? विधि और निषेधमें विधिका लोभ है और निषेधका भय है। ये भय और लोभ जब तक रहेंगे, तब तक आपकी स्वरूपमें स्थिति नही होगी। इसलिये भय और लोभकी [illegible] कर दो। ये छूट जायेंगे। बेपरवाही करो केवल [illegible]। आ गया भय तो आ गया। लोभ हो गया तो हो गया। आपकी अवस्थामें कहता हूँ। हर एकके लिए मैं नहीं कहता हूँ। हर एक बातको समझेगा नही, उल्टा असर हो जायगा। और आपके उल्टा असर नही होगा, नहीं होगा, नहीं होगा। क्योंकि ये जब समझमें आ गई कि विधि और निषेध— ये करना चाहिए और ये नहीं करना

चाहिए, ये दोनों होते है और मिटते है, आते है और जाते है, और आने-जानेवालोंकी रहनेवालेपर कोई जिम्मेवारी नही है, रहनेवालेपर कोई असर नहीं है, रहनेवालेमे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं है, न निषेधसे बनता है, न विधि से बनता है! और न निषेधसे बिगडता है, न विधिसे बिगडता है, उसका बनता बिगड़ता है ही नही, तो आप पर असर कैसे पडेगा?

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते।।

(गीता १४।२३)

वह विचलित होता ही नहीं है। मानो ज्यो-का-त्यो रहता है यह अर्थ हुआ इसका। भय और आशा ये दोनो छोडो। भय और आशामे ससार मात्र बंधा है। किसी प्रकारका न तो भय हो और न किसी प्रकारकी आशा हो। जितना चुप रह सको, चुप रहो। और हे नाथ! मेरे से नही छूटती कहते रहो। कह सकते हो कि नही? जितना मिनट चुप रह सको चुप रह जाओ। इस शरणागतिमे और चुप रहनेमे बडी भारी ताकत है। तो आप निर्बलोको बल आ जायगा। और वह कार्य हो जायगा। आपमे तो आ जायगा बल और काम हो जायगा सिद्ध। आपमे बल आयेगा निर्विकार रहनेसे और सिद्ध होगा शरण होनेसे। चुप होनेसे शक्ति आती है।

यह बात अनुभव सिद्ध है कि बोलते-बोलते बोलना

बन्द हो जायगा। पड़े रहो बोलनेकी शक्ति आ जायगी। शक्ति स्वत: आती है निष्क्रिय होनेसे। और सक्रिय होनेसे शक्ति नष्ट होती है। जितने भोग—संग्रहके लिए काम करते हैं उनमें थकावट होती है। नींद लेनेसे थकावट दूर हो जाती है और शक्ति आती है। निष्क्रिय होनेसे करनेकी शक्ति आती है यह तो अनुभव है न? इसलिये निष्क्रिय रहनेसे शक्ति आ जायेगी। और हे नाथ! ऐसा कहनेसे काम सिद्ध हो जायेगा। यह रामबाण उपाय है। इसमें सन्देह हो तो बोलो। तो शरण होकर निसन्देह हो जाओ। यह तुम्हारा असली इलाज है। इस अवस्थामें चुप होनेमें परिश्रम नहीं करना है। कोई क्रिया हो गई तो हो गई, नही हुई तो नहीं हुई। अपने मतलब नहीं। अपनी तरफसे कोई क्रिया न तो करो और न ही ना करो। दोनोंसे उदासीन रहो। क्रिया हो तो होती रहे। इस तरह तत्वज्ञ जीवन्मुक्त महापुरुष जिसको कहते हैं उसकी अभी-अभी सिद्धि हो गई।

राम! राम! राम!

जिनके दर्शन मात्रसे आपको प्रसन्नता होती है, उनकी सेवा करना आपका कर्त्तव्य है। बड़े-बूढ़ों ने आपका पालन किया है, रक्षाकी है, विद्या दी है, बुद्धि दी है, सम्पत्ति दी है। उनकी सेवा करना भी आपका कर्तव्य है। अतः उनकी सेवा करो। उन्हें सुख पहुँचाओ, इससे हमारेपर जो पुराना ऋण है, वह उतर तो नहीं सकता, पर माफ हो जायगा। सेवासे अभिमान नहीं होगा और संसारमें रहनेकी विद्या आ जायगी। ऐसे प्रेम और सेवा होगी तो संसारके लोग चाहेंगे। जो सेवा करनेवाले हैं उनको सब लोग चाहते हैं।

मनुष्यको चाहिये जहाँ कहीं रहे अपनी आवश्यकता पैदा कर दे। भाई हो या बहिन हो, साधु हो या गृहस्थ हो, कोई क्यों न हो। अपनी आवश्यकताको जरूर पैदा कर दे, तो वह संसारमें बड़े सुखसे रहेगा। आवश्यकता कैसे पैदा करें? एक तो हर समय अच्छे-से-अच्छे काममें लगे रहो। यह समय बड़ा कीमती है। इस समयके समान कोई चीज कीमती नहीं है। आप समय देकर विद्वान् बन सकते हैं समय देकर धनी बन सकते हैं। समय देकर बड़े कीर्ति-वाले हो सकते हैं, परिवारवाले हो सकते हैं। ध्यान दे, समय लगानेसे सब चीजें मिल सकती हैं। परन्तु सब चीजें देनेपर भी समय नहीं मिलता। कोई कहे कि उम्र भरमें जो भी प्राप्त किया एक मिनट समयके लिये वह सब कुछ देता हूँ, पर उसके बदले में एक मिनटका समय भी नहीं मिल सकता। समय देने से सब मिल सकता है;

परन्तु सब देनेपर भी समय नहीं मिलता है। समयको कितना कीमती कहे? भागवतमे आया है–

तुलयाम लवेनापि न स्वर्ग नापुनर्भवम्।
भगवत्संगिसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः।।

(१/१८/१३)

भगवान्‌के प्रेमी पुरुषोका लव मात्रका संग अच्छा है उससे न तो मुक्तिकी तुलना कर सकते और न ही स्वर्गकी। गोस्वामीजीने भी कहा है–

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग।।

(मानस ५/४)

सतके लवमात्र सग मिलनेके समान स्वर्ग और मुक्तिकी भी तुलना नहीं हो सकती। समय इतना कीमती है। समय मिले तो इसे बेकार मत जाने दो। इस समयको उत्तम-से-उत्तम, ऊंचे-से-ऊंचे काम में लगाओ। धनकी लोग बड़े आदरके साथ रक्षा करते हैं तिजोरीमे बन्द कर देते हैं। धन तो तिजोरीमें बन्द हो सकता है, पर समय तिजोरीमें बन्द नहीं हो सकता। समय देनेसे धन मिलता है। धन देनेसे समय नहीं मिलता। समय तो हरदम सावधान होनेसे ही सार्थक होगा। नहीं तो निरर्थक बीत जायगा। जिन लोगोंने समयका आदर किया है, वे बडे श्रेष्ठ पुरुष बन गये। वे अच्छे महात्मा बन गये, उन

लोगों ने क्या किया है? जीवनका समय भगवत्-चरणोंमे लगाया है। संसारके भोगोंसे विमुख होकर परमात्म-तत्त्व जाननेके लिये समय लगाया है। वे संत और महात्मा बन गये। समयके बराबर कोई कीमती चीज नहीं है संसारमें। लवमात्रका सत्संग हो जाय। साधु-महात्माका संग हो जाय। भगवान्का संग हो जाय, प्रेम हो जाय। भगवान्में आकर्षित हो जाय। वह समय सबसे ऊंचा है।

अतः इस समयको उत्तम-से-उत्तम काममें खर्च करो। स्वाध्याय करो, जप करो, कीर्तन करो, सेवा करो। अच्छी पुस्तकोंका पठन-पाठन करो। विषय भोगोंमें, ताश, हंसी-दिल्लगी, नाच-तमाशा-सिनेमा, बीड़ी-सिगरेट आदिमें समय बरबाद मत करो। बीड़ी-सिगरेट पीते हैं। चिलम पीते हैं। आप जरा विचार करो, आपके पास जो समय है, उसमें भी आग लगाते हो, धुआं करते हो? धुआं हो गया, धुआं! आपका जो समय है उसमें भी आग लगती है। पाँच-सात मिनट आपने बीड़ी-सिगरेट पी तो उस समयमें भी धुआँ लग गया। पैसे गये, समय गया, स्वतन्त्रता गई— राम! राम! राम! राम! अरे! फायदा क्या हुआ? किसी तरहका फायदा नहीं। जो नहीं पीते हैं, उन्हें आपने गन्दगी दे दी। उनकी नाकमें भी धुआं चढ़ गया।

एक संतसे किसीने पूछा— महाराज! आप बीड़ी पीते हो? तो वे बोले पीते तो नहीं, पर लोग पिला देते हैं।

गाड़ीमें बैठते हैं, लोग फूंक मारते हैं। अब क्या करे? तो जो नहीं पीना चाहे, उन्हें लोग ऐसे पिला देते हैं। बताओ उन्हें तंग किया, दुःख दिया। कहा है— "**पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई**"।। दूसरोंको पीडा दी, तो आपको क्या मिला? दूसरोंकी स्वतन्त्रतामें भी बाधा डाल दी और आप सदाके लिये परतन्त्र हो गये, वह भी धुएँके। ऐसे निकम्मे काममें समय लगाया। राम! राम! राम! राम!

यह समय भगवान्‌के लिये लगाओ तो भगवान् मिल जाय। भक्त बन जाओ। जिनके लिये भगवान् कहते हैं— "**मैं हूँ संतन का दास भगत मेरे मुकुट मणि**"। मुकुटमणि बन जाते है। कौन? जो भगवान्‌के चरणोंमें समय लगाते हैं। भगवान् भी आदर करते हैं। उन्होंने क्या किया कि अपने समयको भगवान्‌के चरणोंमें लगाया। ऐसा समय ऐसे नष्ट करनेके लिये है! ताश खेलनेमें, पत्ते पीटनेमे समय लगा दिया। राम! राम! राम! राम! विद्या अध्ययन करते, सेवा करते, दूसरोंका उपकार करते, तो समयका उपयोग होता। कितना बढ़िया काम होता है! वह समय ऐसे बरबाद कर दिया। यह समय ऐसे नष्ट करनेके लिये नहीं मिला है।

हमारी बहिनोंकी दशा क्या है? इधर-उधरकी बातोंमे समय लगा देती हैं। राम! राम! राम! घरपर कोई बात करनेको नही मिला तो पड़ौसीके यहाँ बाते करने चली जाती हैं। समय लगा देती हैं। अगर नाम-जप करो,

क़ीर्तन करो, रामायणका पाठ करो। दिन भर राम-राम करो तो निहाल हो जाओगी। मीराबाईकी मुक्ति हो गई। इसमें कारण क्या था? भगवान्‌का भजन किया। वह भगवान्‌के भजनमें लग गई तो आज मीरा बाईके पद गाये जाते हैं। भगवान्‌में प्रेम पैदा होता है। कितनी ऊंची हो गई मीरा बाई! संसारमे प्रसिद्ध हो गई। उनका कितना ऊंचा नाम! परन्तु किसीसे यदि पूछो कि मीराकी सासका क्या नाम है? तो उत्तर मिलता है कि पता नहीं। भजन करनेसे जीव बड़ा होता है। अत: अपने समयको सार्थक करो। ऊँचे-से-ऊँचे, अच्छे-से-अच्छे, श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ काममें लगाओ। समय बरबाद मत करो। यह पहली बात है।

दूसरी बात— जो काम करें वह सुचारू रूपसे करें। काम करनेका तरीका काम करनेकी विद्या बढ़ाते ही चले जाओ। लिखना-पढ़ना, बोलना, रसोई बनाना, कपड़े धोना, सफाई करना, झाड़ू देना, बर्तन आदि साफ करना है। बड़े सफाईसे करो, बड़ी सुन्दर रीतिसे करो। सुचारु रूपसे करनेसे काम अच्छा होगा। नौकरी ही करना है, तो नौकरीका काम ऐसे बढ़िया ढंगसे करो कि जिससे मालिक राजी हो जाय। यदि मालिक कभी नाराज होकर निकाल भी दे तो निकलना तो पड़ेगा, पर आपने वहाँ काम-धन्धा करके जो विद्या हासिल कर ली, क्या वह उस विद्या को छीन लेगा? नीतिमें आता है कि ब्रह्मा जी भी वापिस नहीं ले सकते। काम करनेकी योग्यता है, आपका स्वभाव है,

उसे कोई छीन नही सकेगा। वह गुण तो आपके पास रहेगा। वह कितनी बढ़िया बात है!

थोडे समयमे, थोड़े खर्चेमे बढिया काम हो जाय, ऐसा स्वभाव बनाओ जो सब लोग खुश हो जायॅ, प्रसन्न हो जायॅ गृहस्थोसे ऐसी बाते हमने सुनी है, जो माताएॅ-बहिने चीजे अच्छी बनाती है, उनका सब आदर करते हैं, पर इस बातका अभिमान नही करना चाहिये। अभिमान तो पतन करनेवाला होता है। "**निर्ममो निरहंकार**" अहकार तो छोडना है। अरे! काम-धन्धा करके फिर उससे भी अहकार कर लो! इसलिये सुन्दर रीतिसे काम करो, सुचारुरूपसे काम करो। मान-बडाईके लिये नहीं, रुपये-पैसोके लिये नही। वाह-वाहके लिये नहीं, अपना अन्त.करण शुद्ध करनेके लिये, निर्मल करनेके लिये, जिससे भगवान्मे प्रेम बढे। प्रेम बढ़ानेके लिये काम-धन्धा करो, सेवा करो। काममे चातुर्य बढ़ाने से आपकी मॉग हो जायगी।

तीसरी बात— व्यक्तिगत खर्चा कम करो। दान-पुण्य करो। बडे-बूढो की रक्षा करो। दीनोकी रक्षा करो। अभाव-ग्रस्तोको दो। सेवा करो, पर अपने शरीरके निर्वाहके लिये साधारण वस्त्र, साधारण भोजन, साधारण मकान, उससे अपना निर्वाह करो। भाई-बहिन सबके लिये यह बड़े कामकी बात है। जो खर्चीला जीवन बना लेता है वह पराधीन हो जाता है। खर्चा कम करना तो हाथकी बात है और ज्यादा पैदा करना हाथ की बात

नही। आजकल लोग खर्चा तो करते हैं ज्यादा और पैदा के लिये सहारा लेते है झूठ-कपट, बेईमानी-धोखेबाजी, विश्वासघातका। इससे क्या अधिक कमा लेते है? अधिक कमा ले यह हाथकी बात नहीं, खर्चा कम करना हाथकी बात है। जो हाथकी बात है उसे करते नही और जो हाथकी नही, वह होती नही। दुख पाते रहते है उम्र भर। इस बात को समझ ले कि भाई अपने व्यक्तिगत कम खर्चेसे ही काम चला सकते है। बढिया-से-बढिया माल खा लो और चाहे साधारण दाल-रोटी खा लो निर्वाह हो जायगा। यदि शरीर बीमार है तो दवाई ले लो। निर्वाह की दृष्टिसे तो कोई बात नहीं, परन्तु स्वाद और शौकीनीकी दृष्टि ठीक नही है। यह बहुत बडी गलती है। इससे बचनेके लिये, स्वतन्त्र जीवन बितानेके लिये खर्चा कम करो।

धन कमाना आजकल होशियारी कहलाती है। लोग कहते है कि बडा होशियार है, कितना धन कमा लिया इसने! अरे! धन क्या कमा लिया! उम्र गवा दी। आप मरेंगे तो कौडी एक साथ चलेगी नहीं। धन कमानेके कारण जो झूठ-ठगी, बेईमानी, धोखेबाजी, विश्वासघात आदि अपनाना पड़ा, वह जमा हुआ है अन्त:करणमे और धन रह जायगा बैकोमें, आलमारियोमे, बक्सोंमे। यह साथ जायगा नही। धन संग्रह करनेमें जो-जो पाप किये वे साथ चलेंगे। तो यह पापकी पोट सिरपर रहेगी, साथ चलेगी। काले बाजारसे धन कमा लिया। आय-करकी

चोरी कर ली। बिक्री-करकी चोरी कर ली। बडी होशियारीकी! किया क्या? महान् नाश कर लिया। महान् पतन कर लिया। साथ चलनेवाली पूजी नष्ट कर दी और यही छूटनेवाली पूजी सग्रह कर ली। मरनेपर कुछ साथ नही चलेगा। सब धन यही धरा रह जायगा। पीछे लोग खायेगे और दुख पाओगे आप। नरकोमे जाना पड़ेगा आपको, यह होशियारी है? यह कोई समझदारी है! कितनी बडी भारी बेसमझी है, मूर्खता है! तो अब क्या करे? अब पाप छोड दो। अब बेईमानी, ठगी, झूठ-कपट, विश्वासघात, धोखेबाजी नही करेगे। परिश्रम करेगे। जितना मिलेगा उसीसे काम चलायेंगे। पाप नही करेगे। यह है चौथी बात।

कुछ लोग कहते है पहले जो पाप कर लिया, वह पाप तो हो ही गया। कलंक तो लग ही गया। अब धन क्यों छोड़े? यह बुद्धिमानी है क्या? अरे भाई! जैसे आप भोजन करने लगे। आपसे कहे कि यह क्या कर रहे हो! इसमे जहर मिला है। आप यह नहीं कहोगे कि आपने पहले नहीं कहा, अब तो इसे खायेंगे ही। तुरन्त हाथका भोजन फेंक दोगे और उलटी करना शुरू करोगे। खाया हुआ भी निकल जाय तो बड़ा अच्छा है।

श्रोता— महाराज! आपको पता नहीं। आजकल झूठ-कपटके बिना निर्वाह नहीं हो सकता। कानून ऐसा बन गया, संसार ऐसा ही हो गया। इसलिये इसके बिना काम नहीं चलता।

पू० श्री— अच्छा भाई! काम चलाओ कितने दिन चलाओगे? बीस वर्ष, पचास वर्ष, सौ वर्ष कितने दिन चलाओगे? इतना तो समय ही नही मिलता।

श्रोता— अगर नही कमायेंगे तो मर जायेंगे।

पू० श्री— क्या हर्ज है भाई! आज बिना पापके मर जाओ। बादमे भी मरना तो है ही, साथमे पाप की गठरी बांध कर क्या करोगे? अरे भाई! बिना पाप ही मर जाओ क्या हर्ज है? पाप करनेके लिये मानव शरीर मिला है क्या? पाप नहीं करेगे, अन्याय नही करेगे, भगवान्‌की तरफ बढ़ें, इस प्रकार निश्चय करके बहुतसे लोगोंने मुक्ति पाई है। भाई! समय अच्छे काममें लगाओ, उत्तम काम करो। नीचा काम मत करो। हर भाई-बहिनको चाहिये कि पाप नही करे। अन्तःकरणको मैला न करे। सज्जनो! अन्तःकरण को निर्मल रखो। यह जीवन पवित्र हो जाय। इसीलिये यह मानव शरीर मिला है। अतः उत्तम-से-उत्तम काममे लगे रहना है। अन्यायपूर्वक काम नहीं करना है। ईमानदारीसे अपना जीवन निर्वाह कर लेना है।

आजकल शादीमे लडकोकी नीलामी होती है नीलामी! लड़कीका पिता बेचारा स्वय तो शर्माता है, दूसरोंसे कहता है कि उनके लडका है आप बात करो। हमारी कन्यासे सम्बन्ध कर ले। पूछते हैं, अमुककी लड़की है आप सम्बन्ध कर लो। जवाबमे, पन्द्रह हजार रुपये कीमत। राम! राम! राम! राम! आज ऐसी दशा है।

कन्याओका ऐसा तिरस्कार! ऐसे स्त्री जातिका तिरस्कार करना ठीक नही। किस बात पर हुआ? पैसोके बदले। अरे! पैसे तो आज है, कल नही। पैसे तो नष्ट होनेवाले है। कितनी बडी भारी दुःखकी बात है! पैसोके बदले मनुष्यका तिरस्कार! बडे पाप की बात है। अन्यायकी बात है। भाइयो और बहिनोसे कहना है कि लडका ब्याहना हो तो गरीब घरकी लड़की लो। वह काम-धन्धा करेगी, अच्छा व्यवहार करेगी। बडे घरकी लड़की काम-धन्धा तो करेगी नही, मालकिन बन जायगी।

एक लडकीकी बात हमने सुनी। उस लड़कीकी शादी हो गई। लडकी थी गरीब घरकी, लडकेवालोंने पैसा माँगा ज्यादा। उसका जी ऊब गया। लड़कीकी बड़ी अवस्था हो गई थी। उसने कहा, पिताजी! आप उधार लेकर उनसे विवाह कर दीजिये, अभी कोई बात नहीं, फिर मै ठीक कर लूँगी। परन्तु आप मेरे लिये दान रूपसे मत देना। कन्याको उधार देता हूँ, ऐसा देना। करदी शादी, शादी करनेके बाद धन खूब दिया। शादी के बाद वह गई। ससुरालमे तो खाटपर बैठ गई और पतिसे कहा– 'लाओ मेरी जूती लाओ।'

'तेरी जूती मै उठाऊँ'! आश्चर्यसे पूछा।

'मेरे बापने पैसा दिया है आपको खरीदा है। पता है कि नहीं?'

'कितने रुपये लगे?'

'हजारों रुपये लगे हैं।' कन्याने उत्तर दिया।

अब उस लडकेने भोजन नही किया। माने पूछा क्या बात है? 'मा मेरी जो स्त्री आई है वह यहा तक कहती है कि मेरी जूती उठाकर लाओ।'

'बहु ऐसा क्यो कहती हो?' माने पूछा।

'हमारे बापने इतना खर्चा किया है, कर्जा लेकर खर्च किया है, इसलिये यह नौकर है हमारा, इसे लाना पडेगा।'

लडकेने कहा— 'मै तो जूती नहीं उठाऊँगा, अगर ऐसी बात है तो मै रोटी नहीं खाऊगा।'

'मेरे बापके नौकर हो मेरे बापने रुपये दिये है। पता है कि नहीं। ऐसे मुफ्त आये है क्या आप! इतना इन्तजाम किया है। सोलह हजार रुपये उधार लिये थे।

इस प्रकार कहने-सुननेसे लड़के वालोंने रुपया वापिस किया और लडकी बहूकी तरह रहने लगी। कन्याये लज्जाकी मूर्ति है। इनका इस प्रकार तिरस्कार करना, समाजमे बडा अपमान होता है।

बडे दुःखकी बात है! खर्चा तो पूरा करते हो, फिर काम नहीं चलता तो बेईमानी करते हो। बड़े अन्यायकी बात है। इसका नतीजा खराब होगा। जो अन्याय करते हैं उनकी आत्माको शान्ति नहीं मिलेगी। जो धन दुःख देकर लिया जायगा, वह धन आकर आग लगायेगा।

गायका दूध पीते है उसे छानते है कि कहीं रूआँ (वाल) न आ जाय। दूध तो प्रसन्नतासे दिया जाता है, वाल टूटनेसे खून आता है खून। बाल आ जाय तो क्या हर्ज है?

अरे रूआँ एक भी टूटेगा तो गौ माताको दु:ख होगा। अत दु ख देकर ली हुई चीज बडी अनिष्टकारी होती है। लडकेवालोको कहना चाहिये कि हम धन नही लेगे हम तो केवल कन्या लेगे। कन्या-दान लेते है, कन्या दान लेना भी तो दान है, बडा भारी दान है! क्यो लेते है? अभी हम लेगे तो आगे भगवान् हमे पुत्री देगे तो हम भी कन्या-दान करेगे। ऐसी रिवाज है कि दहेजकी चीजे भी घरमे नही रखते, उसे कुटुम्बमे, परिवारमे लगा देते है। बेटीको, ब्राह्मणोको सबको बाट देते हैं। घरमे कोई चीज न रह जाय ऐसे मिठाई आदि बाटते है। अपनेपर तो कर्जा नही रहा और लोग सब राजी होते है।

शादीके बाद बहूके पीहरसे कोई चीज आती है तो सासु आदि उसकी निन्दा करते है कि क्या चीज भेजी? बहूरानी सुन रही है, उसको लगे बुरा। भला माकी निन्दा किसको अच्छी लगेगी? माकी निन्दासे हृदयमे दु ख होता है। बादमे जब वह हो जायगी मालकिन तो जो वह चाहेगी वही होगा। इसलिये उसे प्यार करो, स्नेह करो, राजी रखो, बहुके घरसे जो आया उसमे अपने घरसे मिलाकर बाटो। लोगोसे कहो कि ऐसा बहुत आया है। तो बहूकी माकी हो जायगी बडाई इससे बहू खुश हो जायेगी। आप कहेगे कि रुपया लगता है। अरे रुपया तो लगता है। पर बीस-पचास रुपये और लगानेसे आदमी अपना हो जायगा। बहू आपकी हो जायगी। सदाके लिये खरीदी जायगी। सौ-पचास रुपयेमे कोई आदमी खरीदा

जाय तो कोई महँगा है? सस्ता ही पडेगा। गहरा विचार करो। व्यवहार भी अच्छा रहेगा। प्रेम भी बढेगा। बहू भी राजी होगी कि मेरी सासने मेरी माँकी महिमा की है। इतना खर्च किया ! उम्रभर असर पडेगा, इसलिये भाई! थोड़ा-सा त्याग करो। खेती करनेवाले कितना बढ़िया-से-बढ़िया अनाज होता है, उसे मिट्टीमे मिला देते हैं। क्यों? खेती होती है। इसी तरह आप भी त्याग करो। उसका फल बड़ा अच्छा होगा।

जो वस्तुएँ मिली है उनका सदुपयोग किया जाय। लड़के-लड़कीका ठीक तरहसे पालन किया जाय, अच्छी शिक्षा दी जाय। उनके अच्छे भाव बनाये जायँ, सद्गुणी और सदाचारी बने। पैसे कमानेमें तो आपको समय रहता है, परन्तु बच्चे क्या कर रहे है, कैसे पल रहे है, क्या शिक्षा पा रहे हैं, इन बातोंकी तरफ आप ख्याल ही नहीं करते। अरे भाई! यह सम्पत्ति है असली। यह मनुष्य महान् हो जायगा। कितनी बढ़िया बात होगी! जितने-जितने महापुरुष हुए हैं, उनकी माताये बडी श्रेष्ठ हुई हैं। ऐसी माताओंके बालक बढिया हुए हैं। संत-महात्मा हुए हैं। मांका स्वभाव आता है बालकोंमे। इस कारण माताओंको चाहिये कि बालकोको अच्छी शिक्षा दें। परन्तु शिक्षा देती हैं उल्टी, लडकियोंको सिखाती हैं कि अपना धन तो रखना अपने पासमें। जब अलग होगी तो वह धन तेरे पासमें रह जायगा और ऐसे सिखाकर भेजती हैं कि ससुरालमें काम तू क्यों करे, तेरी

जिठानी करे, ननद करे। तू काम मत किया कर। अब वहाँ कलह होगी, खटपट मचेगी। आपके बहू आयेगी, वह भी अगर ऐसी सीखी हुई आ जायगी तो वह भी ऐसा ही करेगी काम नहीं करेगी। फिर आप कहेगी कि हमारी बहू काम नही करती। आप अच्छा करो तो आपके लिये अच्छा होगा। बुरा करो तो बुरा होगा भाई।

कलियुग है इस हाथ दे, उस हाथ ले, क्या खूब सौदा नगद है।

इसलिये आप अपने मातापिताका, सासससुर का आदर करो, सेवा करो, सत्कार करो। तो आपका असर पड़ेगा बालकोपर। वृद्धावस्थामें भी आपकी सेवा करेंगे। परन्तु आप अगर ऐसा नही करोगे, अपने माइतोंकी सेवा नही करोगे तो बालकोपर भी ऐसा ही असर पड़ेगा। उनका स्वभाव भी ऐसा ही बनेगा। आप सदा ही ऐसे नही रहोगे। जीते रहोगे तो बूढ़े भी होओगे। उस समय वे सेवा नही करेगे , फिर आप कहेगे कि ये सेवा नहीं करते, बात नही मानते। तो तुमने अपने माइतो- (बडो-) की सेवा कितनी की! अब तुम क्यो आशा रखो? इसलिये अपना आचरण अच्छा बनाओ।

आजकल तो मांबाप बच्चोको व्यसन सिखाते है। खेल सिखाते है। चाय पिलाते है, छोटे-छोटे छोरों को। आजकल छोरा दूध नही पी सकते। मलाई आ जाय तो घृणा करते है। बड़े आश्चर्य की बात है! हमें तो बचपनकी बात याद है, दूध पीना होता तो कहते थे कि

क्या है इसमें तारा(घीकी बूंदें) तो है ही नहीं! आजकल घी तो कौन पी सके, हिम्मत ही नही है। वे मलाई ही नही पी सकते। चाय पीते हैं। राम! राम! राम! राम! चायसे माथा खराब हो जाय नींद आवे नही। स्वास्थ्य बिगड जाय। आखें खराब हो जाय दवाई लगे नही और पैसा लगे ज्यादा मुफ्त में। यह दशा हो रही है। तो भाई! ऐसा मत करो। गायोंका पालन करो, उनकी रक्षा करो। आपका जो गांव है, कस्बा है। अकाल पड़ जाय तो गायोके लिए आप खर्च करो तो बडा अच्छा है। मोटर आप रख लेते हो धुएँके लिये, और गायें नही रख सकते। कुत्ता पालन तो कर लेंगे, गऊ का पालन नहीं करेंगे। वाह! वाह! वाह! रे कलियुग महाराज! आपने लीला अजब दिखाई! यह दशा हो रही है।

आप बाल-बच्चोंको व्यसन मत सिखाओ। कपडे आदि बढ़िया (फैशनवाले) पहनाकर राजी होते है कि हमारे बच्चे ठीक हो रहे है। उनकी आदत बिगड़ रही है बेचारों की। इसलिये सादगी रखो, अपने भी सादगी, बाल बच्चोंके भी सादगी। अच्छे ढंगसे काम कराओ, उत्साह रखो, काम धन्धा ठीक कराओ। बाल-बच्चोंसे भी काम कराओ। आपके घर नौकर है, (नौकर रखनेकी जरूरत है तो रखो)। नौकर रखकर नौकरों के वशीभूत मत हो जाओ। नौकर बढिया काम-नहीं करेगा, आपको भी सब काम करना आना चाहिये। नौकर जितना काम करते हैं, आपको आ जाय तो आपको चकमा नही दे

सकते। रसोइया कहे—घी तो इतना लग गया। अरे! हम जानते है। इतना घी कैसे लग गया? आप करना जानोगे तो आप शासन कर सकोगे। नही तो इतना लग गया? हाँ साहब लग गया। कैसे बताये यह बात? आजकल काम धन्धा करने मे बेइज्जती समझने लगे।

माता सीता काम करती थी। रसोई बनाती थी लक्ष्मण आदि थे, उन्हे बडे प्यार से भोजन कराती थी। स्वय खटकर परिश्रम करके सासुओकी सेवा करती थी। क्या वह छोटे घरकी हो गई? सैकडो ही नही हजारों दासियां थी,उनके सामने अपने घर का काम करती थी। लड़ने मे तो बेइज्जती नहीं समझती, घरके काम करनेमें बेइज्जती समझती है; बडे पतनकी बात है। अत· अपना समय ठीकसे लगाओ। अच्छी आदत बनने पर आपकी ग्राहकता हो जायगी। सब आपको चाहेगे,आपकी आवश्यकता पैदा होगी। घर के, बाहर के सब लोग चाहेगे और यदि ऐसा नही करोगे,तो समय तो निकल जायगा हाथोसे और आदत बिगड़ जायगी। बिगड़ी हुई आदत साथ चलेगी, स्वभाव बिगड जायगा। यह जन्म-जन्मान्तरों तक साथ चलेगा। स्वभाव जिसने अपना निर्मल, शुद्ध बना लिया है, उसने असली काम बना लिया है। अपने साथमे चलनेकी असली पूजी सग्रह करली। स्वभावको शुद्ध बनाओ, निर्मल बनाओ। तो क्या होगा? ममता छूटेगी। सेवा करनेसे अहंकार छूटेगा। निर्मम-निरहंकार हो जाओगे। संसारका काम

करते-करते ऊंची-से-ऊंची स्थितिको प्राप्त हो जाओगे। बस, लग जाओ तब काम होगा। इसलिये भाइयोंसे, बहिनोंसे कहना है कि सत्संग सुनो और सुननेके अनुसार अपना जीवन बनाओ। ऐसा जीवन बनेगा, तो जीवन निर्वाह होगा और मनमें भी शान्ति रहेगी। "**निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति**"।(गीता २-७२) महान् शान्तिकी प्राप्ति होगी। इस प्रकार भगवद्गीता व्यवहारमें परमार्थ सिखाती है। युद्धके समयमें कह दिया—

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि।।

(गीता २-३८)

युद्धसे परमात्माकी प्राप्ति हो जाय, कामको भगवान्का समझो, उत्साहसे करो। सेवा करने वाला पवित्र हो जाता है। भगवान्का भजन हरदम करते रहो जिससे सद्बुद्धि कायम रहे। भगवान्की याद बनी रहे।

नारायण! नारायण! नारायण!

।।श्रीहरि.।।

पंचामृत

आप जहाँ रहते है, वहाँ अपने घरमे रहते है, अपने घरमें रहनेका माहात्म्य नही है, पर भगवान्‌के दरबारमे रहे तो बड़ा भारी माहात्म्य है। इस घरको तो आपने अपना माना है। पर यह घर पहलेसे भगवान्‌का ही था। अब भी है, और पीछे भी भगवान्‌का ही रहेगा। मरोगे तो यह घर साथ थोड़े ही चलेगा। यह तो भगवान्‌का ही है। अतः आजसे आप मान लो कि भगवान्‌के घरमें रहते है। साक्षात् भगवान्‌के घरमे ही रहते हो। हरिद्वार आते है तो कहते है– ओ हो! हरकी पेडियाँ हैं ये तो। वृन्दावान आ गये तो कहते हैं– भगवान्‌की लीलाभूमिमे है। अयोध्यामे आ गये तो भगवान्‌के दरबारमें आ गये। भगवान्‌का दरबार मान लो, भगवान्‌का घर मान लो, तो वही घर वृन्दावन हो गया। हरदम यही बात रहे कि हम तो भगवान्‌के घरमे ही रहते हैं और खास लाडले हैं हम तो भगवान्‌के। आजसे यह बात मान लो। अपने-अपने घरोको अपना घर मत मानो। अरे! भगवान्‌का ही घर है। अपना घर तो बीचमें माना है। पहले भगवान्‌का था और पीछे भी भगवान्‌का रहेगा। फिर बीचमे अपना कैसे

हो गया? छापा मारा है मुफ्तमें!

एक बात पर और ध्यान देना– जो भी काम करो, भगवान्‌का मानकर करो। खेती करो चाहे घरका काम-धन्धा करो, भोजन करो चाहे भजन करो, कपडा धोओ चाहे स्नान करो। शरीर भी भगवान् का है, तो भगवान्‌की सेवा के लिये इसका काम करते हैं। खाना-पीना भी भगवान्‌का काम है। काम धन्धा भी भगवान्‌का ही करते हैं, सब ससारके मालिक भगवान् हैं तो सब शरीरोंके मालिक भी भगवान् है। तो शरीरोंका और संसारका काम किसका हुआ? भगवान्‌का ही हुआ! कैसी मौज की बात है! भगवान् के दरबार मे रहते हैं और काम-धन्धा भी भगवान्‌का ही करते है– दो बातें हुई।

अब तीसरी बात– घरमे जितनी चीजे है ये भी भगवान्‌की ही हैं। घर भगवान्‌का और आप भगवान्‌के तो चीजे किसी दूसरेकी हो सकती हैं क्या? माताओ और बहिनोंको चाहिये कि उन भगवान्‌की चीजोको लेकर रसोई बनावें। मनमे समझें कि ओ हो! मै तो ठाकुरजी को भोग लगानेके लिए प्रसाद बना रही हूँ। ठाकुरजी के भोग लगावें। ठाकुरजीको भोग लगाकर घरके जितने लोग हैं, उनको ठाकुरजीके जन (पाहुने) समझकर प्रसाद जिमावें। उन्हे ऐसा मानें कि ये सब ठाकुरजीके प्यारे जन हैं। ठाकुरजीके प्यारे लाड़ले बालक हैं। इनको भोजन करा रही हूँ। ठाकुरजीकी सेवा कर रही हूँ। जैसे किसी बच्चेको प्यार करे तो उसकी माता राजी हो जावे कि

नही? ऐसे ही भगवान्‌के बालकोकी सेवा करें तो भगवान् राजी हो जावे। कैसी मौज की बात है! भगवान्‌की रसोई बनाई, भगवान्‌के ही भोग लगाया और भगवान्‌के ही बालकोको भोग, प्रसाद जिमा दिया। अपने भी भोजन करे तो ठाकुरजीका प्रसाद समझते हुए भोजन करें। ठाकुरजीका प्रसाद है। कैसी मौज की बात!

तुम्हहि निबेदित भोजन करहीं।
प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं।

(मानस २/१२८/१)

केवल भोजन ही नही गहना पहने तो ठाकुरजीके अर्पण करके। ठाकुरजीका ही कपडा पहनें। सब चीजे प्रसाद रूपमें ग्रहण करे तो सब चीजे पवित्र हो जाती है। आपने देखा है कि नहीं। ठाकुरजीके प्रसाद लगावे और वह बाँटे तो हरेक आदमी हाथ पसारेगा। छोटे से छोटा कणका दो तो वह राजी हो जायेगा। लखपति हो चाहे करोड़पति हो, आपके सामने हाथ पसारेगा और प्रसादका आप छोटा-सा कणका दे दें, वह राजी हो जायगा। वह क्या मीठे का भूखा है?

कोई लखपति, करोडपति आपसे प्रसाद माँगे और अगर उसे कहे कि चलो बाजारमें मीठा दिलाऊँ आपको। तो वह नाराज हो जायगा। वह धनी आदमी कहेगा कि मिठाईका भूखा हूँ क्या मैं? हमें प्रसाद चाहिये। प्रसादका

कितना महत्त्व है बताओ? ठाकुरजीका प्रसाद है। घरमे सब चीजें ठाकुरजीकी हैं।

आप करें तो एक बात बतावें बहुत बढ़िया! कृपा करके कर लें तो बहुत बढ़िया और फायदेकी बात है। घरमें जितना धन पड़ा है सबपर तुलसीदल रख दो। जितने गहने, कपड़े है सबपर तुलसीदल रख दो। जितने रुपये-पैसे पड़े हैं तिजोरियोंमें सबपर तुलसीदल रख दो। घर पर ही धर दो। जितने भी गाय, भेड़, बकरी हैं, उन पर तुलसी दल रख दो। छोरा-छोरीपर भी धर दो। किनके बालक है? ठाकुरजीके बालक हैं।

एक चमत्कार है। आप कर सको तो बतावें पर हृदयसे करो, जब होवे। छोरा उद्दण्ड है और कहना मानता नहीं। सच्चे हृदयसे अपनी ममता उठा लो कि मेरा है ही नहीं। केवल ठाकुरजीका ही है। छोरा बिल्कुल सुधर जायगा। जैसे ठाकुरजीके भोग लगाने से चीजे पवित्र हो जाती हैं। बड़े-बड़े पुरुष आदर करते हैं। ऐसे सच्चे हृदयसे अपनी ममता बिल्कुल मिटा कर, केवल ठाकुरजीका ही मान लें तो वह शुद्ध हो जायगा। पवित्र हो जायगा। ऐसी बात करके देखो। शर्त यह है कि अपनी ममता बिल्कुल उठा लें। जैसे मुसलमानोंका छोरा है, ऐसा ही यह छोरा है। मर जाय तो कोई असर नहीं हमारेपर। हमारा छोरा नहीं है अब मरा तो ठाकुरजीका। जब कि ठाकुरजीका मरता ही नहीं। यहाँ मर गया तो वहाँ जन्मा। ठाकुरजीसे बाहर होता ही नहीं। ऐसा करने मे

छोरा पवित्र हो जायगा। एकदम बात ठीक है। ममता ही मलिनता है। इसके कारण ही मलिन होता है। दान-पुण्य करते हैं तो इनके साथ अपना कोई सम्बन्ध नही माने। "**दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे**"। (१७/२०)। 'अनुपकारिणे' का अर्थ यह नही कि कोई उपकार न कर दे हमारा। मानो पहले उपकार किया नही और आगे भी आशा नही है ऐसेको दिया जाय। जिनसे अपना स्वार्थका सम्बन्ध न हो उनको दो चाहे घर वालोके साथ स्वार्थका सम्बन्ध न रखो। एक ही बात रहेगी। टोटल एक आयेगा। चाहे तो अपनापन न हो, वहा सेवा करो अथवा जहाँ सेवा करो वहाँ अपनापन मिटा दो– एक ही बात होगी।

भगवान् के हैं हम। भगवान्‌के दरबारमे रहते है। भगवान्‌का ही काम करते है। भगवान्‌के प्रसादसे भगवान्‌के जनोकी सेवा करते हैं। मै भी भगवान्‌का ही प्रसाद पाता हूँ– यह पचामृत है असली। आजसे इस बातको पकड लो। "सर्व भावेन् माम् भजति" और सब भावोंसे भगवान्‌का ही भजन करें। सब काम करे, स्नान करे, शरीर को शुद्ध करे, तो भाव रखे कि ठाकुरजीका शरीर है। ठाकुरजीका काम करता हू मै। तो ठाकुरजीपर एहसान कर सकते हैं कि महाराज आपका काम करता हूँ।

एक ब्राह्मण कहा करते थे– मै रोज एक ब्राह्मण जिमाता हूँ। स्वयं भोजन करते थे, भाव रखते कि रोज

एक ब्राह्मण जिमाता हूँ। यह कितनी बढिया बात है। ऐसे ही परिवारका परिवार ठाकुरजीका। ठाकुरजीके परिवारका पालन करता हूँ। ठाकुरजी भी कहे कि मेरे परिवारका पालन करता है भाई! भगवान्‌पर असर पडेगा कि हा, ठीक बात है। यह अपनापन नही रखता है। अपनी ममता नहीं रखता है। यह तो मेरे परिवारका पालन करता है।

सब भावसे भगवान्‌का ही काम हो जाय, यह अव्यभिचारी भक्ति हो जायगी। अपने कुछ लेना नही, अपनी ममता नही है। न स्वार्थ है न ममता, घर वाले मानें या न माने, सेवा करे या न करे, अपनेको तो ठाकुरजीके परिवारका पालन करना है। उनकी सेवा करनी है भाई! परिवारके लोग काम न करें तो राजी होना चाहिये कि बहुत अच्छी बात है। अगर काम कर दें, अनुकूल चले तो समझना चाहिये कि हमारा किया हुआ बिक्री हो जायगा। सेवाकी हुई बिक्री हो जायगी। इसलिये यदि वे कुछ भी नही करे और दुख दें तो अच्छा है। सासू भी दुःख दे, वहू भी दुःख दे, देवरानी-जिठानी, ननद आदि सब दुःख देवें तो राजी होना चाहिये कि बहुत ही निहाल हो गये अपने तो सेवा करनी है और ये दुःख देवे तो दुगुना फायदा होगा। एक तो सेवाका लाभ होगा और ये दुःख दे तो पाप कटेंगे। दुःख कब रहेगा बताओ? दुख मिलनेमें भी आनन्द होगा। दुःख की जगह ही नही रही, सब गली बन्द हो गई। तो वही सर्ववित् है। ठीक तरह समझ गया।

यदि ससारसे सुखी और दु.खी होता है तो समझा नही।

हम तो मस्तीमे बैठे रहे। अपनेको कोई किंचिन्मात्र भी दु ख नही। भगवान् सबका भरण-पोषण करते है। सबका पालन करते हैं। तो ऐसे भगवान्‌के भक्तोको दु.ख होता ही नही। वे हरदम मौजमे रहते है इतने मस्त रहते है कि उनके सगसे मस्ती हो जाती है। ठाकुरजीकी याद करनेसे बन्धन टूट जाय। नाम लेनेसे याद करनेसे, लीला सुननेसे पाप नष्ट हो जाय इतने महान् पवित्र।

पवित्राणां पवित्रं यो मंगलानां च मंगलम्

मूलमे बात क्या है? एक छोटी-सी बात है। "मै भगवान्‌का ही हूँ" बस औरका नही हूँ। सेवा करने के लिये ससारका, परन्तु अपना मतलब निकालनेके लिये किसी का नही हूँ। केवल भगवान्‌का हूँ अपने को केवल भगवान्‌का मान लो तो घर भगवान्‌का, दरबार भगवान्‌का, परिवार भगवान्‌का, सम्पत्ति भगवान्‌की, काम भगवान्‌का, प्रसाद भगवान्‌का, सब भगवान्‌का हो जायेगा। यह बात एकदम सच्ची है।

आपको बिल्कुल अनुभवकी बात बतावे। जिस बालकको माने अपना माना है। वह छोरा दौडकर गोदमे चढ जाय तो माँ हँसेगी। पीछेसे पीठपर चढ जाय तो माँ हँसेगी और जानकर ऊँ ऊँ ऊँ कर के रोता है। तो माँ हसती है कि देखो ठगाई करता है मेरे से। छोरेकी वह कौन-सी क्रिया है, जिससे माँको प्रसन्नता नही होती है।

सकते, क्योकि मै ठाकुरजीका दास हूँ।

अपना अभिमान करके दुख पा रही है दुनिया। इसलिये कृपा करके अभिमान छोड दो, भगवान्‌के अर्पण कर दो कि हम तो ठाकुरजीके है। अपनी शक्ति सब ठाकुरजीके काममे लगानी है। "**त्वदीय वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये**" "**सर्व भावेन भजति माम्**" सब भावसे भगवान्‌को भजते है। नाम जप भजन है, कीर्तन भजन है, पाठ भी भजन है, सुनना, कहना, सब भजन है। और तो क्या "**सर्वभावेन भजति**" उठना, बैठना, खाना, पीना, सोना, जागना, भगवान् का काम कर रहे है। कितनी ऊँचे दर्जेकी बात है। कितनी श्रेष्ठ बात है! कितनी सुगम बात है। अभी आप मान लो तो निहाल हो जाओ। हम तो भगवान्‌के अर्पण हो गये और भगवान्‌का ही काम करेगे। काम हमारा है ही नही। यह हमारा घर नही तो इसका काम हमारा नही। सब भगवान्‌का काम है।

मैने सतो से सुना है कि जिनके अपना करके कुछ नहीं है, न मन अपना है, न बुद्धि अपनी है, न शरीर अपना है, न प्राण अपने है, न इन्द्रियाँ अपनी है, न घर अपना है न सम्पत्ति अपनी है। सब चीजे ठाकुरजीकी है, वे जहाँ रहते है, मौज रहती है। सब भगवान्‌के अर्पण कर दी। इसलिये मस्तीमे रहते है हरदम।

एक सतकी एक बात सुनी है हमने। सत बड़े विचित्र होते है। वे बाजारमे जब जाते, और देखते कि बहुत बढिया-बढिया मिठाईयाँ रखी है, फल पडे है, दुकाने

वह बालक जो करता है माँ उससे राजी होती है। कारण क्या है? छोरा मेरा है। ऐसे ही हम भगवान् के बन कर जो भी करे, हमारी हर क्रिया भगवान्‌का भजन हो जायगी। भजन क्या? भगवान्‌की प्रसन्नता। कुछ भी काम करो भगवान् खुश होते रहते है। मेरा बच्चा है। यह मेरा बालक खेल रहा है। कैसी मस्ती है!

बात एक ही है। भगवान्‌का होना। सच्ची बात है। आपसे पूछा जाय कि आपने इस घरमे जानकर जन्म लिया है क्या? जीते हो तो जानकर जीते हो क्या? जानकर जीवे तो मरे कौन भाई? मरे ही नही। स्वस्थ शरीरमें रहते हो तो जानकर रहते हो क्या? अगर जानकर रहते हो तो बीमार मत पडो। शरीरमें जो बल-बुद्धि है वह जानकर प्राप्तकी है क्या? तो बूढ़े मत होवो। पराधीन मत हो। पर पराधीन हो जाते है। इसलिये केवल अभिमान घरका है और कुछ नहीं। कोरा अभिमान करते हो। इसलिये हम ठाकुरजीके है। ठाकुरजीके आधीन है। ठाकुरजी जो शक्ति दें, वही करते हैं।

हनुमानजीने कितना काम किया? रामजी लकामें गये तो पुल बनवाया और पुल बनवा कर पार पहुँचे। परन्तु हनुमानजी कूद गये। इनमें बल किसका है? बल ठाकुरजीका है। "**बार-बार रघुवीर सँभारी**"। "**प्रबिसि नगर कीजे सब काजा। हृदयँ राखि कोसलपुर राजा**"।। वाल्मीकि रामायण मे आता है कि हनुमानजीने ऐसी गर्जना की कि हजार रावण भी आ जाय तो मेरा कुछ नहीं बिगाड़

सजी हुई है। जहाँ देखते बढिया चीज वही खडे हो जाते और मनसे कहते कि ठाकुर जी भोग लगाइये। बरफी है, इमरती है, जलेबी है, लड्डू है, इनका भोग लगाइये। बस खडे होकर मस्तीसे भोग लगा देते। ऐसे आप भी ठाकुरजीके अर्पण कर दो कि भोग लगाइये तो ठाकुरजी के अर्पण हो जाता है। आप कहो कि क्या जोर आवे इसमे? तो करो आप भी। कौन मना करता है? जहाँ बढिया चीज देखो, ठाकुरजीके अर्पण कर दो।

सब कुछ ठाकुरजीका है। हम क्या करे? हम तो मौज करेगे। अब हमारा कोई काम तो रहा नही। केवल ठाकुरजीका काम है, ठाकुरजीका नाम है, ठाकुरजीका चितन है, ठाकुरजीकी बात सुननी है। आपका काम क्या रहा? ठाकुरजीका काम करते हैं। सब ससारके मालिक भगवान् है। मालिकके चरणोमे मालिककी चीजे अर्पण करते हुए आपको क्या जोर आता है बताओ? आप कहते हो मेरी है, पर कितने दिनोसे, कितने वर्षोसे मेरी कहते हो? कितने वर्षो तक मेरी कहते रहोगे? आखिर तो वह रहेगी ठाकुरजीकी ही। जीते जी ही भगवान्‌को अर्पण कर दो अपने हृदयसे, तो मौज हो जायगी। कितनी सुगम और कितनी बडी भारी बात!

संतोंकी साखी आती हैं—

राम नाम की सम्पदा दो अन्तर तक धूण।
या तो गुपती बात है कहो बतावे कूंण।।

कौन बताता है ऐसी बढ़िया बात! और कितनी सुगम! कितनी ऊँचे दर्जे की! कितनी निश्चिन्तताकी, निर्भयताकी, आनन्दकी बात है! न चिन्ता है, न भय है, न उद्वेग है, न जीनेकी इच्छा है, न मरनेकी इच्छा है। हमारी इच्छा कुछ नही। ठाकुरजीकी इच्छामें इच्छा मिला दी। अब ठाकुरजी जैसा करें, जैसा रखे।

जाही विधि राखे राम ताहि विधि रहिये।
सीताराम सीताराम सीताराम कहिये।।

अपनी कोई मांग नहीं, कोई इच्छा नही। इससे आफत तो हमारी मिट जाय और भगवान् राजी हो जायँ। मेरी माननेसे चिन्ता रहती है। मेरा कमरा है। अमुक चीज वहाँ पडी है। कपड़ा वहां सुखाया है। कोई ले जायगा तो चिन्ता रहती है। ठाकुरजीको अर्पण कर दिया तो कैसी मौज है! गया तो ठाकुरजीका, रहा तो ठाकुरजीका!

नारायण! नारायण! नारायण!

।।श्रीहरिः।।

शरणागति

भगवान्‌ने भगवद्‌गीतामें सबसे श्रेष्ठ भक्तियोगको कहा है जो कि शरणागति है। उपदेश भी आरम्भ हुआ है अर्जुनके शरण होनेसे और अन्तिम उपदेश यही दिया है कि—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

(गीता १८/६६)

इससे पहले भगवान्‌ने 'गुह्य' कहा, 'गुह्यतर' कहा, 'गुह्यतम' कहा और यहाँ 'सर्वगुह्यतम' (१८/६४) कहा। तो सबसे अत्यन्त गोपनीय बात कहते है "**मामेकं शरणं व्रज**"। एक मेरी शरण हो जा। अर्जुनने पूछा था कि "**धर्मसम्मूढचेताः त्वां पृच्छामि**" धर्मके निर्णय करनेमें मेरी बुद्धि काम नही करती, इस लिये आपसे पूछता हूं।

भगवान् कहते है कि जिसका निर्णय तू नहीं कर सकता, वह मेरेपर छोड़ दे। अर्जुन धर्मका निर्णय नहीं कर सकता था कि युद्ध करूँ या न करूँ। तो भगवान् कहते

हैं कि यदि तुझे पता नहीं है तो इस दुविधामें मत पड़। इन सबको छोड़कर एक मेरे शरण हो जा। मैं तेरेको संपूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा। तू चिन्ता मत कर। तो इसमें सब तरहके आश्रयका त्याग कर देना है। किसीका आश्रय नहीं रखना है। मनमें किसी अन्यका भरोसा और आश्रय सब छोड़ दे। अनन्य भावसे भगवान्‌के शरण हो जायँ। साधन और साध्य इसीको मानें। यह शरणागतिकी सबसे गोपनीय और सबसे बढ़िया बात भगवान्‌ने कही।

इसमे एक बहुत विशेष रहस्यकी बात है— **'अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः'** मै तुझे संपूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू चिन्ता मत कर। यह बहुत विलक्षण बात कही। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि तू शरण हो जायगा तो तेरा पाप मै नष्ट करूँगा। अर्जुनको लोभ दिया गया हो, ऐसी बात नहीं है। तू अनन्यभाव से शरण हो जा, धर्मकी परवाह मत कर, धर्मके त्यागसे होनेवाले पापका ठेका मेरेपर आ गया। गीतामें कहा है **'नेहाभिक्रम नाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते'** (गीता २/४०) निष्काम भावसे जो कर्म करता है उसका उल्टा फल नहीं होता। अधर्म होता ही नहीं। तू केवल मेरी शरण हो जा। इसके बाद कोई चिन्ता मत कर। शरण होनेके बाद मनमे कोई चिन्ता भी हो जाय, किसी तरहकी विपरीत भावना भी पैदा हो जाय, मन भी परमात्मामें न लगे, संसारके पदार्थोंमे राग-द्वेष भी हो जाय, तत्परता और निष्ठा न दिखाई दे— इस तरहकी कमियाँ मालूम देवे तो उन

कमियोंके लिये तू चिन्ता मत कर। भगवान्‌की शरण होनेपर उसको किसी तरहकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। निश्चिन्त हो जाना चाहिये। निर्भय और निःशोक होना चाहिये। निःशंक होना चाहिये। लोक में क्या दशा होगी, परलोकमें क्या होगा, यहा यश होगा कि अपयश होगा, निन्दा होगी कि स्तुति होगी, ठीक होगा कि बेठीक होगा, लाभ होगा कि हानि होगी, लोग आदर करेंगे या निरादर करेंगे— इन बातोंकी तरफ ख्याल ही मत कर। केवल अनन्य शरण हो जा और सब आश्रय छोड़ दे। तू भय मत कर। शोक भी मत कर और शंका भी मत कर। जो वस्तु चली गई उसका शोक होता है। और विचारमें बात आती है तो शंका होती है। शोकका भी त्याग कर दे। 'मा शुचः' का तात्पर्य है कि तू किसी तरहका किंचिन्मात्र भी सोच मत कर।

मैं तो भगवान्‌के शरण हो गया। जैसे कन्यादान करनेपर लड़की समझ लेती है मेरा तो विवाह हो गया। बस एकसे सम्बन्ध हो गया। अब उम्र भर यह अटल अखण्ड सम्बन्ध है। इस सम्बन्धके बाद चाहे पति रहे, न रहे, वह आदर करे, अनादर करे, छोड़ दे, संन्यासी हो जाय। हमारी भारतकी नारी ऐसी है कि जिस एक को स्वीकार कर लिया, तो कर लिया। इसीका दृष्टान्त संतोंने दिया है कि **पतिव्रता रहे पति के पासा। यूं साहिब के ढिग रहे दासा।** दास भगवान्‌के पास ऐसे रहे जैसे पतिव्रता रहती है। उसके एक ही मालिक; एक ही तरफ उसका विचार

रहता है। उसकी राजीमें राजी। उसकी सेवा करना।

एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। कायँ बचन मन पति पद प्रेमा।।

(मानस ३/४/५)

उसका एक ही धर्म है, एक ही व्रत है, एक ही नियम है– शरीर, मन, वाणीसे केवल पति के चरणोंमें प्रेम। इसी तरह भगवान्‌की शरण होना। एक ही व्रत कि मैं भगवान्‌का हूँ। भगवान्‌का धर्म, भगवान्‌की आज्ञा, भगवान्‌की अनुकूलता– वही धर्म है। केवल भगवान्‌का ही मै हूँ, और किसीका नहीं। और किसीका नहीं हूँ– इसका तात्पर्य क्या है? किसीसे किंचिन्मात्र कभी भी कुछ लेना नहीं। किसीसे किंचिन्मात्र भी कोई अभिलाषा नहीं रखनी है। जैसे पतिव्रता होती है वह घरमें सबकी सेवा करती है। सास, ससुर, देवर, जेठ, जेठानी, देवरानी, ननद आदिकी सेवा करती है। समय पर अतिथि सत्कार भी करती है। साधुओंको भी भिक्षा देती है; परन्तु अपना सबंध किसीके साथ नहीं। देवर, जेठ आदिसे सम्बन्ध है तो पतिके नातेसे ही है। स्वतंत्र सम्बन्ध किसीसे कुछ भी नही। इसी तरहका व्रत ले लें कि केवल भगवान्‌से ही मेरा सम्बन्ध है। और किसीसे कुछ संबंध नहीं है। नियम है तो भगवान्‌के भजनका, और भगवान्‌के शरण होनेका। एक यही नियम है। ऐसे अनन्य भावसे भगवान्‌के शरण हो जाय, किसी अन्यका आश्रय न रहे।

दूसरोकी सेवा करनेमें, काम कर देनेमें, शास्त्रके

अनुसार सुख पहुँचानेमें दोष नहीं है। दोष है अपने कुछ चाहनेमें, भगवान्‌के शरण होनेपर किसीसे कभी भी किंचिन्मात्र भी चाहना न हो। "**मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा।।**" (मानस ७/४५/२) भगवान्‌का दास कहलवाकर किसीसे किंचिन्मात्र भी आशा रखता है तो भगवान्‌का दास कहाँ हुआ? जिस चीज की आशा रखता है, उसीका दास है। भगवान्‌का दास नहीं है। वह धन, सम्पत्तिका दास है, भगवान्‌को तो एक साधन मानता है। वह भगवद्भक्त नही है। ऐसे किसीसे किंचिन्मात्र भी कुछ नहीं चाहता। न आशा है, न भरोसा है, न बल है, न उसका किसीसे सम्बन्ध है। ऐसे केवल अनन्य भावसे मेरे शरण हो जाय, और शरण होकर फिर निश्चिंत हो जाय।

"मा शुचः" का अर्थ है किसी विषयकी चिन्ता मत कर। किसी बातकी कोई चिन्ता आ जाय तो कह दे कि भाई मैं चिन्ता नहीं करूँगा। तो चिन्ता मिट जायगी। दृढ़ता रहनेपर चिंता आ भी जायगी तो ठहरेगी नहीं। चिन्ता तभी तक आती है, जब तक आप अपनेमें कुछ बलका अभिमान रखते है। चिन्ता आती है तो इसमें एक सूक्ष्म बात रहती है जैसे चिन्ता हुई कि धन नही है। तो इसका अर्थ होता है कि मैं धन कमा सकता हूँ, ले सकता हूँ, और जब मै धन कमा सकता हूँ तो यह अपने बलका भरोसा और अहंकार ही हुआ। शरणागतके धनके अभावका अनुभव तो हो जायगा, परन्तु चिन्ता नहीं

होगी। ऐसे ही कोई रोग हो जाय तो क्या करूँ रोग दूर नही होता– ऐसी चिन्ता नहीं होगी। रोग होता है, वह अच्छा तो नहीं लगता, परन्तु रोग दूर नहीं होता, ऐसी चिन्ता नहीं होगी। चिन्ता तभी होती है, जब रोग दूर करनेमें अपनेपर विश्वास होता है, अपना कोई भरोसा होता है। अपने पर भरोसा बिल्कुल मत रखो। अपने बलका, विद्याका, बुद्धिका, योग्यताका, अधिकारका बल बिल्कुल नहीं रखना है।

"सुने री मैंने निर्बल के बल राम।"

सर्वथा केवल भगवान्‌का ही बल है, हमारा बल कुछ नही है। बल रहनेसे चिन्ता होती है। यह बारीक बात है, भाई लोग ध्यान दें। जब कभी चिन्ता होती है तो इसका अर्थ यह होता है कि मैने यह नहीं किया, वह नहीं किया, यह कर लूँगा। ऐसा कर लूँगा। उसे मैं कर लूँगा, तब चिन्ता होती है। शरण तो हो गया, पर भगवान्‌के दर्शन ही नही हुए। भगवान्‌के चरणोंमे प्रेम ही नहीं हुआ। मेरी तो ऐसी अनन्य गाढ़ प्रीति भी नहीं हुई। इन बातोंके न होनेका अभाव तो खटकता है, पर चिन्ता नहीं होनी चाहिए, क्योकि यह मेरे हाथकी बात नही। मै तो भगवान्‌को ही पुकारूँ। भगवान्‌का ही हूँ। अब उनकी मर्जी होगी तो प्रेम करेंगे, मर्जी होगी तब दर्शन देंगे, मर्जी होगी तब अनन्य भक्त बनायेंगे। अब वे मर्जी आवे जैसा बनाओ। अपने-आपको तो दे दिया। जैसे कुम्हार

मिट्टीको गीली करके रौंदता है। अब वह रौंदता है तो मर्जी है, कुछ बनाता है तो मर्जी है, पहिले सिरपर उठा कर लाया तो मर्जी है, चक्केपर चढ़ाकर घुमाता है तो उसकी मर्जी है। मिट्टी नहीं कहती कि क्या बनाते हो? घड़ा बनाओ, शकोरा बनाओ, मटकी बनाओ, चाहे सो बनाओ। मिट्टी अपनी कोई मर्जी नही रखती। इसी तरह हमें प्रेमकी कमी मालूम पड़ती है। पर यह भी मालूम न होने देना अच्छी बात है कि मेरे को क्या मतलब प्रेम से, दर्शनसे, भक्तिसे। मैं तो भगवान् का हूँ– ऐसे निश्चिन्त हो जायँ। **कमी मालूम देना दोष नहीं है, पर कमी की चिन्ता करना दोष है।** अपना बल कुछ नहीं है। अपने तो उसके चरणोंमें आ गए। अब उसके हैं। अब वह चाहे जन्म-मरण दे। जैसी मर्जी हो, वैसे करे। सब तरहके संकल्प-विकल्प छोड़कर केवल मेरी शरण हो जाय। तू चिन्ता कुछ भी मत कर।

भक्तके जितनी निश्चिन्तता अधिक होती है, उतना ही प्रभाव भगवान्की कृपाका विशेष पडता है, और जितनी वह खुद चिन्ता कर लेता है, उतना वह प्रभावमें बाधा दे देता है। तात्पर्य, भगवान्के शरण होने पर भगवान्की तरफसे जो कृपा आती है, उस अटूट, अखण्ड, विलक्षण, विचित्र कृपामें बाधा लग जाती है। भगवान् देखते हैं कि वह तो खुद चिंतित है तो खुद ठीक कर लेगा, तो कृपा अटक जाती है। जितना निश्चिन्त हो सके, निर्भय हो सके, निःशोक हो सके, निःशंक हो सके,

संकल्प-विकल्प से रहित हो सके, उतनी ही श्रेष्ठ शरणागति है। इसलिये कह दो कि अपनेपर कोई भार ही नहीं है। अपनेपर कोई बोझा ही नहीं है, अपनेपर कोई जिम्मेदारी ही नही है। अब तो सर्वथा हम भगवान्‌के हो गए।

भगवान्‌से कुछ भी चाहता है कि मेरे ऐसा हो जाय तो वह भगवान्‌से अलग रहता है। जैसे एक अरबपतिका लड़का पितासे कहे कि मेरेको दस हजार रुपये मिल जायँ। इसका अर्थ होता है कि वह पितासे अलग होना चाहता है। वास्तवमें करोड़ो, अरबों मेरे ही तो है। मेरेको कुछ नही लेना है। लेने की इच्छा होती है तो वह भगवान्‌से अलग कर देती है, भगवान्‌की आती हुई कृपामे आड लगा देती है। जैसे बिल्लीका बच्चा होता है, उसे अपना ख्याल ही नहीं रहता कि कहाँ जाना है, क्या करना है। वह तो अपनी माँपर निर्भर रहता है। बिल्ली उसे पकड़ लेती है तो बच्चा अपने पंजे सिकोड़ लेता है। कुछ भी बल नही करता। अब जहाँ मर्जी हो वहाँ रख दे, चाहे जहाँ ले जाय, उस बिल्लीकी मर्जी। ऐसे ही भगवान्‌का भक्त उनकी तरफ देखता है। उनके विधानमे प्रसन्न रहता है। उसे सुख-दुःख, सम्पत्ति विपत्ति, सयोग-वियोग, आदर-निरादर, प्रशसा-निन्दासे कोई सरोकार ही नही। अपनी तरफसे कोई चिन्ता नही, विचार आ जाय तो भगवान्‌को पुकारे, "हे नाथ मैं क्या करूँ?" इस तरह चिन्ता छोड़कर उनके

शरण हो जाय।

प्रश्न— शरणागतका जीवन कैसा होता है?

उत्तर— गीताके अनुसार कर्त्तव्य-कर्मका त्याग नहीं करना चाहिये अपितु सम्पूर्ण धर्मोंको अर्थात् कर्मोंको भगवान् के अर्पण करना ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है। जब सम्पूर्ण कर्म भगवान्के समर्पण करके भगवान्के ही शरण होना है तो फिर अपने लिये धर्मके निर्णयकी जरूरत ही नहीं रही।

मैं भगवान्का हूँ और भगवान् मेरे हैं— इस अपनेपनके समान योग्यता, पात्रता, अधिकार आदि कोई भी नहीं है यह सम्पूर्ण साधनोंका सार है। इसलिये शरणागतको अपनी वृत्तियों आदिकी तरफ न देखकर भगवान्के अपनेपनकी तरफ ही देखते रहना चाहिये।

भगवान् कहते हैं— मेरे शरण होकर तू चिन्ता कर है, यह मेरे प्रति अपराध है, शरणागतिमें कलंक है औ इसमें तेरा अभिमान है। मेरे शरण होकर मेरा विश्वा व भरोसा न रखना— यही मेरे प्रति अपराध है और अप दोषोंकी चिन्ता करना तथा मिटानेमें अपना ब मानना— यह तेरा अभिमान है। इनको तू छोड़ दे। ते आचरण, वृत्तियाँ, भाव शुद्ध नहीं हुए है, दुर्भाव पैदा हो जाते हैं और समय पर दुष्कर्म भी हो जाते हैं तो भी तू इनकी चिन्ता मत कर। इन दोषोंकी चिन्ता मैं करूँ

भगवान् जो कुछ विधान करते है, वह संसारके सम्पूर्ण प्राणियोंके कल्याणके लिये ही करते हैं। इन